M.A.
43

# विचारमाला
# और
# सूत्रावली



श्रीअरविन्द

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

# विचारमाला और सूत्रावली

श्रीअरविन्द

अदिति कार्यालय
पांडिचेरी-२

अदिति पुस्तक-माला — पुष्प १५ १५ अगस्त १९६८

अनुवादक : चंद्रदीप



प्रथम संस्करण १९६८



प्रकाशक : अदिति कार्यालय, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२
मुद्रक : श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२
स्वात्वाधिकार : श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट, पांडिचेरी-२

Hindi—Vicharmala Aur Sutravali by Sri Aurobindo
Published by Aditi Karyalaya, Pondicherry-2
Printed at Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry-2

अंगरेजीमें श्रीअरविन्दने ज्ञान, कर्म और भक्ति शीर्षकके अधीन बड़ी ही चुभती और व्यंगात्मक भाषामें कुछ सारगर्भ वाक्य लिखे हैं जिनका संकलन 'थाट्स ऐंड एफारिज्म' (Thoughts and Aphorisms) के नामसे छपा है। उसी पुस्तिकाका हिन्दी अनुवाद हम अपने पाठकोंके सामने रख रहे हैं। मूल पुस्तक एक ओर जितनी रोचक है उतनी ही, दूसरी ओर, ज्ञानगर्भित भी है। इसीलिये ऐसी पुस्तकका अनुवाद करना थोड़ा कठिन भी है। फिर भी हमने यथा-साध्य ऐसी चेष्टा की है कि हमारे हिन्दी पाठक उस पुस्तकका थोड़ा-सा आनंद पा सकें। जो पाठक अंगरेजी पढ़ सकें उन्हें मूल पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

— अनुवादक

# विषय-सूची

# विचारमाला और सूत्रावली

# ज्ञान

मनुष्यमें दो परस्पर-संबद्ध शक्तियां हैं: ज्ञान और प्रज्ञा। ज्ञान सत्यका उतना-सा अंश होता है जितना कि एक विकृत मध्यवर्ती क्षेत्रमें दिखायी देता है, जब कि मन अंधेरेमें टटोलते-टटोलते वहां पहुंचता है। प्रज्ञा है वह चीज जिसे दिव्य दर्शनकी आंख आत्माके अंदर देखती है।

*

अंत:प्रेरणा उज्ज्वलताकी एक पतली-सी धारा है जो बृहत् और शाश्वत ज्ञानसे निकलती है; इंद्रियोंके ज्ञानको जितनी पूर्णताके साथ बुद्धि अतिक्रम कर जाती है, उससे भी कहीं अधिक पूर्णताके साथ अंत:प्रेरणा बुद्धिको अतिक्रम कर जाती है।

*

जब मैं बोलता हूं तब बुद्धि सोचती है, "यही बात मैं कहूंगी," पर भगवान् मेरे मुंहमेंसे शब्द निकाल लेते हैं और मेरी जीभ कुछ दूसरी ही चीज कह बैठती है जिसे सुनकर बुद्धि थरथरा उठती है।

*

मैं ज्ञानी नहीं हूं, क्योंकि भगवान्‌ने मुझे अपने कार्यके लिये जितना-सा ज्ञान दिया है उसके सिवा मुझे कोई ज्ञान नहीं है। भला मैं यह कैसे जान सकता हूं कि जो कुछ मैं देखता हूं वही है विज्ञता या अज्ञता? नहीं, वह इन दोनोंमेंसे कोई नहीं है; क्योंकि देखी हुई चीज बस सत्य होती है, वह न तो अज्ञता होती है और न विज्ञता।

*

यदि मनुष्यको इस बातकी केवल एक झांकी भी मिल जाय कि कितने अनंत भोग, कितनी सर्वांगपूर्ण शक्तियां, सहजलब्ध ज्ञानके कितने ज्योतिर्मय शिखर, हमारी सत्ताकी कितनी विशाल शांतियां उन प्रदेशोंमें हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं जिन्हें हमारे स्थूल क्रम-विकासने अभीतक नहीं जीता है, तो वह सब कुछ छोड़ देगा और जबतक वह इन संपदाओंको आयत्त नहीं कर लेगा तबतक चैनसे नहीं बैठेगा। परंतु पथ संकीर्ण है, द्वारोंको खोलना कठिन है, और क्षुद्र-तर सामान्य क्षेत्रोंसे हमारे पगोंको दूर हटानेमें बाधा देनेवाले प्रकृतिके अंकुश-रूप भय, अविश्वास और संदेह भी वहां मौजूद हैं।

*

बहुत देरसे मैंने जाना कि जब बुद्धि मर गयी तब प्रज्ञा उत्पन्न हुई; उस मुक्तिसे पहले मुझे केवल ज्ञान ही प्राप्त था।

*

जिसे मनुष्य ज्ञान कहते हैं वह है झूठे बाह्य रूपोंको बुद्धिद्वारा स्वीकार करना। प्रज्ञा पर्देके पीछेकी ओर ताकती और प्रत्यक्ष देखती है। बुद्धि ब्योरेकी चीजोंको निश्चित करती और उनका परस्पर-भेद दिखला देती है। बुद्धि विभक्त करती है, प्रज्ञा सभी विरोधी वस्तुओंको बस एक सामंजस्यके अंदर युक्त कर देती है।

*

या तो केवल अपने ही विश्वासोंको ज्ञानका तथा दूसरेके वि-श्वासोंको भूल-भ्रांति, अज्ञान अथवा धूर्त्तताका नाम देना छोड़ दो या संप्रदायोंके मत-मतांतरों तथा उनकी असहिष्णुताके लिये उनकी निंदा मत करो।

*

अंतरात्मा जो कुछ देखता है और अनुभव कर चुका है उसे वह जानता है; बाकी सब कुछ है बाह्य बोध, कुसंस्कार और विश्वास।

*

मेरा अंतरात्मा जानता है कि वह अमर है। परंतु तुम एक

मृत शरीरको टुकड़े-टुकड़े करते और विजयोल्लासके साथ चिल्लाते हो : "कहां है तुम्हारा अंतरात्मा और कहां है तुम्हारा अमरत्व ?"

*

अमरत्व मृत्युके बाद मनोमय व्यक्तित्वके बने रहनेको नहीं कहते, यद्यपि वैसा कहना भी ठीक ही है, बल्कि अमरत्व उस अजन्मा और मृत्युहीन आत्माको सचेतन रूपमें अधिकृत करना है जिसका कि शरीर केवल एक यंत्र और छाया है।

*

उन्होंने अकाटच तर्कोंके द्वारा मेरे सामने सिद्ध कर दिया कि भगवान्‌का अस्तित्व नहीं है, और मैंने उनपर विश्वास भी कर लिया। पीछे मैंने भगवान्‌को देखा, क्योंकि वे आये और उन्होंने मेरा आलिंगन किया। अब भला मैं किसपर विश्वास करूं, दूसरोंके तर्कोंपर या अपने निजी अनुभवपर ?

*

उन्होंने मुझसे कहा : "ये चीजें तो भ्रम-भ्रांति हैं।" मैंने खोज की कि भ्रम-भ्रांति क्या चीज है और तब मुझे पता लगा कि उसका मतलब है एक आंतरिक या आंतरात्मिक अनुभव जो किसी भी बाह्य या किसी भी स्थूल सत्यसे मेल नहीं खाता। तब मैं बैठ गया और मानवीय बुद्धिकी करामातोंपर आश्चर्य करने लगा।

*

भ्रम-भ्रांति विज्ञानका शब्द है और जड़तत्त्वके साथ हमारे व्यापृत हो जानेके कारण जो सत्य हमसे छिप गये हैं उनकी हमारे पास अब भी अनियमित रूपसे आनेवाली झलकोंके लिये वह प्रयुक्त होता है; और आकस्मिक संयोग कहते हैं कलाकारके उन अनुपम स्पर्शोंको जो उस परम और विश्वव्यापी मेधाशक्तिके कार्यके अंदर दिखायी देते हैं जिसने मानो अपनी सचेतन सत्ताके चित्रपटके ऊपर जगत्‌के विषयमें योजना बनायी है और उसे कार्यान्वित किया है।

*

जिसे मनुष्य भ्रम-भ्रांति कहते हैं वह है मन और इंद्रियोंमें पड़नेवाली उस वस्तुकी झलक जो हमारे साधारण मानसिक तथा इंद्रियगत बोधोंसे परे है और उन झलकोंको मनद्वारा गलत रूपमें समझनेके कारण ही यह भ्रांत धारणा उत्पन्न होती है। इससे भिन्न भ्रम-भ्रांति नामकी कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

*

आजकलके अनेक तार्किक पंडित जैसा करते हैं वैसे तुम वागाडंबरके अंदर अपने विचारका गला मत घोंटो अथवा अपनी अन्वेषण-वृत्तिको सिद्धांतों और बनावटी शब्दोंके मोहन-मंत्रद्वारा अभिभूत करके सुला मत दो। सर्वदा खोजते रहो। सभी चीजोंके कारणको खोज निकालो जो जल्दबाजीके साथ दृष्टि दौड़ानेपर महज संयोग अथवा भ्रम प्रतीत होती हैं।

*

कोई व्यक्ति यह निर्धारित कर रहा था कि भगवान्‌को ऐसा या वैसा होना चाहिये, अन्यथा वह भगवान् हो ही नहीं सकते। परंतु मुझे ऐसा लगा कि मैं केवल यह जान सकता हूं कि भगवान् क्या हैं और मैं यह नहीं समझता कि मैं उनसे यह कैसे कह सकता हूं कि आपको ऐसा ही होना चाहिये। भला हमारे पास ऐसा कौनसा मानदंड है जिससे हम उनके विषयमें निर्णय दे सकें? हमारे ये निर्णय तो हमारे अहंकारकी मूर्खताएं ही हैं।

*

संयोग नामकी कोई वस्तु इस विश्वमें नहीं है; मायाका विचार अपने-आपमें एक माया है। मनुष्यके मनमें कभी कोई ऐसा भ्रम नहीं था जिसके पीछे कोई सत्य आवृत और विकृत रूपमें विद्यमान न हो।

*

जब मेरे अंदर भेदबुद्धि थी तब मैं बहुतसी चीजोंसे विकर्षण अनुभव करता रहा; जब वह भेदबुद्धि साक्षात् दर्शनके अंदर खो गयी

तो मैंने सारे संसारमें कुरूप और घृणितकी खोज की, किंतु फिर मैंने उन्हें कहीं नहीं पाया।

*

भगवान्‌ने मेरी आंखें खोल दी थीं; क्योंकि मैंने अशिष्टमें भी शिष्टता, घृण्यमें भी मोहकता, विकलांगमें भी परिपूर्णता और बीभत्स-में भी रमणीयता देखी।

*

ईसाइयों और वैष्णवोंने क्षमाकी बृहत् प्रशंसा की है, पर, मेरा जहांतक प्रश्न है, मैं पूछता हूं, "मुझे क्या और किसको क्षमा करना होगा?"

*

भगवान्‌ने एक मानवीय हाथद्वारा मेरे ऊपर आघात किया; फिर क्या मैं यह कहूं, "हे भगवान्! मैं तेरी धृष्टताके लिये तुझे क्षमा करता हूं?"

*

भगवान्‌ने एक प्रहारके द्वारा मेरा मंगल किया। क्या मैं यह कहूं: "हे सर्वशक्मिान्, मैं इस अपकार और निष्ठुरताके लिये तुझे क्षमा करता हूं पर फिर ऐसा न करना?"

*

जब मैं किसी दुर्भाग्यपर रोता-पीटता हूं और उसे अशुभ कहता हूं, अथवा जब मैं ईर्ष्यालु और हताश होता हूं तब मैं जानता हूं कि मेरे अंदर फिरसे वही चिरंतन मूढ़ जागृत हो गया है।

*

जब मैं दूसरोंको दुःख भोगते हुए देखता हूं तब मैं अनुभव करता हूं कि मैं अभागा हूं; परंतु वह प्रज्ञा, जो मेरी नहीं है, आनेवाले श्रेयको देखती और मंजूर कर लेती है।

*

अपराधीको फांसीपर चढ़ानेके लिये ले जाते हुए देखकर सर

फिलिप सिडनी ( Sir Philip Sydney )* ने कहा था, "वह देखो, भगवान्‌की कृपासे वंचित सर फिलिप सिडनी जा रहा है।" पर और भी अधिक ज्ञानकी बात होती यदि उन्होंने कहा होता, "वह देखो, भगवान्‌की कृपासे सर फिलिप सिडनी जा रहा है।"

*

भगवान् बहुत बड़े और निर्दयी उत्पीड़क हैं, क्योंकि वह प्यार करते हैं। तुम इस बातको नहीं समझते, क्योंकि तुमने न तो कृष्ण-को देखा है और न उनके साथ क्रीड़ा ही की है।

*

किसीने कहा था कि नेपोलियन एक निरंकुश शासक तथा बहुत बड़े हत्यारे थे; परंतु मैंने सशस्त्र भगवान्‌को यूरोपभरमें विचरण करते हुए देखा।

*

मैं भूल गया हूं कि क्या पाप है और क्या पुण्य; मैं तो केवल भगवान्‌को, जगत्‌के अंदर उनकी लीलाको तथा मानवताके अंदर उन-की इच्छाको ही देख पाता हूं।

*

मैंने एक शिशुको कीचड़में लोटते-पोटते देखा और फिर उसी बच्चेको उसकी मांके नहला देनेपर स्वच्छ और समुज्ज्वल देखा, पर प्रत्येक बार ही उसकी नितांत पवित्रताको देखकर मैं कांप उठा।

*

जिस चीजको मैं चाहता था कि सत्य हो या समझता था कि सत्य है, वह घटित नहीं होती; इसलिये यह स्पष्ट है कि संसारको परिचालित करनेवाली कोई सर्वज्ञ सत्ता नहीं है बल्कि वह महज एक अंधी आकस्मिकता अथवा एक कठोर कार्य-कारण-परंपरा है।

*

---

*इंगलैंडके एक प्रसिद्ध कवि और असाधारण प्रतिभासंपन्न व्यक्ति।

अनीश्वरवादी वह भगवान् है जो स्वयं अपने साथ आंख-मिचौली खेलता है; परंतु ईश्वरवादी क्या उससे भिन्न कोई चीज है? है, संभवतः; क्योंकि उसने भगवान्‌की छाया देखी है और उसे पकड़ा भी है।

*

ऐ प्रेमिक! आघात कर! यदि तू इस समय मुझपर आघात नहीं करता तो मैं समझूंगा कि तू मुझे प्यार भी नहीं करता।

*

ऐ दुर्भाग्य! जय हो तेरी; क्योंकि तेरी ही सहायतासे मैंने अपने परम प्रेमीका मुखमंडल देखा है।

*

मनुष्य अभी भी दुःख-दर्दसे आसक्त हैं; जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति हर्ष या शोकसे बहुत ऊपर उठ गया है तो वे उसे अभिशाप देते और चिल्लाकर कहते हैं, "ओ, तू तो जड़ पत्थर है!" इसी कारण ईसामसीह आज भी यरूसलेममें शूलीपर झूल रहे हैं।

*

मनुष्य पापसे आसक्त है; जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति पाप या पुण्यसे बहुत परे चला गया है तब वे उसे अभिशाप देते और चिल्लाकर कहते हैं, "ओ, तू तो सब बंधन छिन्न करनेवाला है; तू तो दुष्ट और दुराचारी है!" इसी कारण अभी भी श्रीकृष्ण वृंदावनमें वास नहीं करते।

*

कोई-कोई कहते हैं कि श्रीकृष्ण कभी नहीं हुए, वह तो एक कल्पित व्यक्ति हैं। उनके कहनेका मतलब है कि वह पृथ्वीपर कभी नहीं हुए; क्योंकि वृंदावन यदि कहीं भी पृथ्वीपर न रहा होता तो फिर भागवत भी न लिखा गया होता।

*

आश्चर्य! जर्मनोंने ईसाके अस्तित्वका ही खंडन कर डाला है;

फिर भी उन्हें फांसीपर चढ़ानेकी बात आज भी सीजरकी मृत्युसे कहीं अधिक बड़ी ऐतिहासिक घटनाके रूपमें बनी हुई है।

*

कभी-कभी हम ऐसा समझने लगते हैं कि केवल वे ही चीजें वास्तवमें मूल्य रखती हैं जो कभी घटित नहीं हुईं; क्योंकि उनके सामने सबसे बड़ी ऐतिहासिक सफलताएं भी प्रायः निस्तेज और प्रभाव-हीन प्रतीत होती हैं।

*

इतिहासमें चार अत्यंत महान् घटनाएं घटित हुई हैं—ट्राय (Troy)[1] नगरका घेरा, ईसाका जन्म और उनका सूलीपर चढ़ना, वृंदावनमें कृष्णका भाग जाना और कुरुक्षेत्रकी रणभूमिपर अर्जुनके साथ उनका संवाद। ट्रायके घेरेने हेलास (Hellas)[2] को उत्पन्न किया, वृंदावनमें भाग जानेके कारण भक्तिमार्गका उदय हुआ (क्योंकि उससे पहले केवल ध्यान-धारणा और पूजा-अर्चना थी), ईसाने अपने फांसीके तख्तेपरसे यूरोपको मानवोचित गुण प्रदान किया, कुरुक्षेत्रका वार्तालाप अब भी मनुष्यको मुक्ति प्रदान करेगा। फिर भी यह कहा जाता है कि इन चारोंमेंसे कोई भी घटना कभी घटित नहीं हुई।

*

लोग कहते हैं कि ईसाकी कहानी जालसाजी है और कृष्ण कवियोंकी सृष्टि हैं। तब तो इस जालसाजीके लिये भगवान्‌को धन्यवाद देना होगा और उन आविष्कर्त्ताओंके सामने नतमस्तक होना पड़ेगा।

*

यदि भगवान् मेरे लिये नरकमें स्थान निश्चित कर दें तो मैं

---

[1] यूनानके पुराणोंमें वर्णित प्रियम देशकी राजधानी।
[2] यूनान देशको ही प्राचीन कालमें 'हेलास' कहते थे।

नहीं समझता कि मुझे स्वर्गके लिये क्यों अभीप्सा करनी चाहिये। वह जानते हैं कि मेरी भलाईके लिये सबसे उत्तम क्या है।

*

यदि भगवान् मुझे स्वर्गकी ओर खींचते हों तो, उनका दूसरा हाथ यदि मुझे नरकमें ही रोक रखनेकी चेष्टा करता हो तो भी, मुझे ऊपर उठनेके लिये ही संघर्ष करना चाहिये।

*

केवल वे ही विचार सत्य हैं जिनके विरोधी विचार भी अपने समय और अपने प्रयोगमें सत्य हैं; अकाट्य सिद्धांत ही अत्यंत भयंकर असत्य होते हैं।

*

युक्ति-तर्क सत्यका सबसे बड़ा शत्रु है, ठीक जैसे कि धर्माभिमान पुण्यका सबसे बड़ा शत्रु है; क्योंकि पहला अपनी निजी भूल-भ्रांतियों-को नहीं देख पाता और दूसरा अपनी निजी अपूर्णताओंको।

*

जब मैं अज्ञानके अंदर निद्रित था तब मैं एक ध्यान-गृहमें आया जो संत पुरुषोंसे भरा हुआ था और मुझे उनका संग बड़ा दुखदायी और वह स्थान कारागार जैसा लगा; जब मैं जगा तब भगवान् मुझे एक कारागृहमें ले गये और उन्होंने उसे एक ध्यानगृह तथा अपने मिलन-कुंजमें परिवर्तित कर दिया।

*

जब मैंने एक नीरस पुस्तक आद्योपांत तथा आनंदपूर्वक पढ़ ली और साथ ही उसकी पूरी नीरसता भी अच्छी तरह देख ली तब मैं समझ गया कि मैंने अपने मनको जीत लिया है।

*

मैंने उस समय यह जान लिया कि मैंने अपने मनको जीत लिया है जब कि मेरे मनने कुरूपके अंदर विद्यमान सौंदर्यका अनुभव किया

और फिर साथ-ही-साथ उसने पूर्ण रूपसे यह भी समझ लिया कि दूसरे लोग क्यों उससे दूर भागते या घृणा करते हैं।

*

कुत्सित और अशुभके अंदर विद्यमान शुभ तथा सौंदर्यके प्रभुको देखना और प्यार करना और फिर साथ-ही-साथ नितांत प्रेमपूर्वक उसकी कुरूपता और बुराईको दूर करनेके लिये उत्सुक होना — बस, यही है सच्चा पुण्य और सच्ची नैतिकता।

*

पापीको घृणा करना सबसे बड़ा पाप है, क्योंकि इसका अर्थ है स्वयं भगवान्को घृणा करना; फिर भी जो ऐसा पाप करता है वह बहुत बड़ा धर्मात्मा होनेका गर्व करता है।

*

जब मैं धर्मभावपूर्ण क्रोधकी बात सुनता हूं तब मैं मनुष्यकी आत्मप्रवंचनाकी क्षमता देखकर दंग रह जाता हूं।

*

यह एक अद्भुत चमत्कार है कि मनुष्य भगवान्को तो प्यार कर सकते हैं, परंतु मनुष्योंको प्यार करनेमें असमर्थ होते हैं। तब भला वे किससे प्रेम करते हैं?

*

धार्मिक संप्रदायोंके झगड़े उन बर्तनोंके झगड़ोंके समान हैं जो यह समझते हैं कि अमरत्वदायी सुधारस केवल उन्हींमें भरा रहने दिया जायगा। उन्हें झगड़ने दो; बस, हमारा काम तो है सुधारस ग्रहण करना और अमरत्व प्राप्त करना, फिर वह चाहे जिस किसी बर्तनमें क्यों न रखा हो।

*

तुम कहते हो कि बर्तनकी सुगंध मदिरामें घुस आती है। पर

वह तो स्वाद है; भला उसके अमरत्व प्रदान करनेके गुणसे उसे कौन-सी चीज वंचित कर सकती है?

*

मेरे अंदर विस्तारित होओ हे वरुण! मेरे अंदर शक्तिशाली वनो हे इन्द्र! अत्यंत उज्ज्वल और प्रकाशमय वन जाओ हे सूर्य! सौंदर्य और मधुरिमासे भर उठो हे सोम! उग्र और भयानक हो उठो हे रुद्र! प्रवल और वेगवान् वन जाओ हे मरुत्! सुदृढ़ और साहसी वन जाओ हे अर्यमा! भोगरत और सुखदायी वन जाओ हे भग! दयार्द्र, कृपालु, प्रेमिल और अनुरागी वन जाओ हे मित्र! उज्ज्वल और प्रकाशक वन जाओ हे उपा! गंभीर और उर्वर वन जाओ हे रात्रि! पूर्ण, प्रस्तुत और प्रफुल्ल हो उठो हे जीवन! मुझे एक धामसे दूसरे धाममें ले चलो हे मृत्यु! इन सवको सुसमन्वित कर दो हे ब्रह्मणस्पति! मैं इन सब देवताओंके अधीन न होऊं हे काली!

*

हे उग्र तार्किक! जब तूने एक वाद-विवादमें विजय पा ली है तब क्या तुमपर महान् दया दिखानी चाहिये, क्योंकि तूने ज्ञानको विस्तारित करनेका एक अवसर खो दिया है?

*

चूंकि वाघ अपने स्वभावके अनुसार ही कार्य करता है और उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता, इसलिये वह दिव्य है, पवित्र है और उसमें कोई वुराई नहीं है। यदि वह अपने विषयमें तर्क-वितर्क करता तो वह एक अपराधी वन जाता।

*

पशु जबतक भ्रष्ट नहीं हुआ है तबतक उसने शुभाशुभके ज्ञान-वृक्षका फल नहीं चखा है; देवताओंने शाश्वत जीवनके वृक्षके लिये उसका परिहार कर दिया है; मनुष्य उच्चतर स्वर्ग और निम्नतर प्रकृतिके वीचमें खड़ा है।

*

धर्मकी सबसे अधिक सांत्वना देनेवाली बात यह है कि कभी-कभी तुम भगवान्‌को पकड़कर अपनी इच्छाभर पीट सकते हो। लोग बर्बर जातियोंकी मूर्खताका उपहास करते हैं क्योंकि वे अपनी प्रार्थनाओंकी सुनवायी न होनेपर अपने देवताओंको मारती-पीटती हैं। पर सच पूछा जाय तो ये उपहास करनेवाले लोग ही मूर्ख और बर्बर हैं।

*

'मर-त्व' नामकी कोई चीज नहीं है। जो अमर है केवल वही मर सकता है; जो 'मर' है वह न तो उत्पन्न हो सकता है और न नष्ट ही हो सकता है।

*

कोई चीज ससीम नहीं है। एकमात्र असीम ही अपने लिये सीमाओंकी सृष्टि कर सकता है। ससीमका न तो आरंभ हो सकता है और न अंत, क्योंकि उसके आरंभ और अंतकी कल्पना करना ही उसकी असीमताको उद्‌घोषित करना है।

*

मैंने एक मूर्खको व्याख्यानमें नितांत मूढ़ताकी बातें कहते सुना और मैं चकित रह गया कि आखिर भगवान्‌का इससे क्या उद्देश्य सिद्ध होता है! मैंने फिर विचार किया और सत्य तथा ज्ञानका एक विकृत रूप वहां देखा।

*

मुसलमान कहते हैं कि भगवान् (अल्लाह) महान् (अकबर) हैं। हां, वह इतने महान् हैं कि, जब कभी इसकी आवश्यकता हो तो, वह दुर्बल भी बन सकते हैं।

*

भगवान् प्रायः ही अपने कार्योंमें असफल होते हैं; यह उनकी निःसीम भगवत्ताका ही परिचायक है।

*

चूंकि भगवान् इतने महान् हैं कि जीते नहीं जा सकते, इसीलिये वह बलहीन भी बन सकते हैं; चूंकि वह इतने पवित्र हैं कि कलुषित नहीं हो सकते, इसीलिये वह बिना हानि उठाये पापाचरणमें भी संलग्न हो सकते हैं; चूंकि वह सब प्रकारके आनंदको चिरदिन जानते हैं, इसीलिये वह दुःखके आनंदका भी आस्वादन करते हैं; चूंकि वह अपरिवर्तनीय ज्ञानसे संपन्न हैं, इसीलिये उन्होंने अपनेको मूढ़तासे वंचित नहीं रखा है।

*

पाप वह है जो एक समय अपने स्थानपर था, पर अब भी बने रहनेके कारण वह अनुचित स्थानपर आ गया है; इसके अलावा पाप और कोई चीज नहीं है।

*

मनुष्यमें कोई पाप नहीं है, बल्कि अत्यधिक मात्रामें रोग, अज्ञान और दुरुपयोग-वृत्ति है।

*

पाप-भावनाका होना आवश्यक था जिसमें कि मनुष्य अपनी निजी अपूर्णताओंसे उकता जाय। यह अहंकारका संशोधन करनेके लिये भगवान्का उपाय था। परंतु मनुष्यका अहंकार स्वयं अपने पापोंके प्रति तो बहुत ही धीमे रूपमें और दूसरोंके पापोंके प्रति बहुत तीव्र रूपमें जाग्रत् रहकर भगवान्के इस उपायका सामना करता है।

*

भगवान् हमें पूर्णताकी ओर ले जानेका जो प्रयास करते हैं उसमें बाधा उत्पन्न करनेके लिये हम उनके साथ पाप और पुण्यका खेल खेलते हैं। पुण्यकी भावना गुप्त रूपसे अपने पापोंका पोषण करनेमें हमें सहायता प्रदान करती है।

*

कठोरतापूर्वक आत्मनिरीक्षण कर, तभी तू दूसरोंके प्रति अधिक उदार और दयार्द्र होगा।

*

विचार सत्यको लक्ष्य करके छोड़ा हुआ एक तीर है; वह एक बिंदुपर तो लग सकता है पर समूचे लक्ष्यको आवृत नहीं कर सकता। परंतु धनुर्धर तो अपनी सफलतासे अच्छी तरह संतुष्ट हो जाता है और उससे अधिक और कुछ नहीं चाहता।

*

ज्ञानके उदय होनेका लक्षण है यह अनुभव करना कि अभी मैं बहुत थोड़ा जानता हूं या कुछ नहीं जानता; और फिर भी, यदि मैं केवल अपने ज्ञानको ही जान पाता तो इसका अर्थ होता कि मैं सब कुछ पा चुका हूं।

*

जब प्रज्ञा आती है तब वह सबसे पहला पाठ यह पढ़ाती है कि "ज्ञान नामकी कोई चीज नहीं है; हैं केवल अनंत परमदेवकी झांकियां।"

*

व्यावहारिक ज्ञान एक दूसरी ही वस्तु है; वह सच्चा और उपयोगी होता है, परंतु वह कभी पूर्ण नहीं होता। अतएव उसे व्यवस्थित और विधिबद्ध करना आवश्यक पर नाशकारी होता है।

*

व्यवस्थित तो हमें करना ही होगा, पर व्यवस्था बनाते और मानते समय भी हमें सर्वदा इस सत्यको दृढ़तापूर्वक पकड़े रखना होगा कि सभी व्यवस्थाएं अपने स्वभावमें क्षणस्थायी और अपूर्ण होती हैं।

*

यूरोप अपने व्यावहारिक और वैज्ञानिक संगठन और कार्यकुशलताके लिये अपने ऊपर गर्व करता है। मैं तबतक प्रतीक्षा कर

रहा हूं जबतक कि उसका संगठन पूर्ण नहीं हो जाता; उसके बाद तो एक बच्चा ही उसका संहार कर देगा।

*

कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति एक पद्धतिका आविष्कार करता है; सामान्य बुद्धिशाली व्यक्ति उसे एक सांचेमें ढालता है जबतक कि कोई दूसरा नवीन प्रतिभाशाली व्यक्ति आकर उसे तोड़-फोड़ नहीं देता। एक सेनाका सयाने सैनिकोंद्वारा परिचालित होना विपज्जनक है; क्योंकि दूसरे पक्षमें भगवान् नेपोलियनको नियुक्त कर सकते हैं।

*

जब हमारे अंदरका ज्ञान नया होता है तब वह अजेय होता है; जब वह पुराना हो जाता है तब वह अपना गुण खो देता है। ऐसा इस कारण होता है कि भगवान् सर्वदा आगेकी ओर बढ़ते रहते हैं।

*

भगवान्में अनंत दिव्य संभावनाएं निहित हैं। इसीलिये सत्य कभी चुपचाप नहीं बैठता, और फिर इसीलिये भूल-भ्रांतिके संतानोंका होना भी उचित सिद्ध होता है।

*

कुछ भक्तोंकी बात सुननेपर हम अनुमान कर सकते हैं कि भगवान् कभी हंसते नहीं; हेन (Heine)[1] प्रायः सत्यके अधिक समीप था जब उसने उनके अंदर दिव्य अरिस्टोफेन (Aristophanes)[2] को पाया।

*

भगवान्का हास्य कभी-कभी शिष्ट कानोंके लिये बड़ा ही भद्दा और अनुपयुक्त होता है; उन्हें मोलिऐर (Moliere)[3] बननेसे

---

[1]जर्मनीके एक कठोर व्यंग करनेवाले आलोचक और कवि।

[2]यूनानके प्रसिद्ध कवि और नाटककार।

[3]फ्रांसके सर्वश्रेष्ठ सुखांत नाटककार।

संतोष नहीं होता, उन्हें तो अरिस्टोफेन (Aristophanes) और रावले (Rabelais)[1] बननेकी भी आवश्यकता होती है।

*

यदि मनुष्य जीवनको कम गंभीरतापूर्वक लें तो वे बहुत शीघ्र उसे अधिक पूर्ण बना सकेंगे। भगवान् कभी अपने कार्यको गंभीरता-पूर्वक नहीं लेते; इसीलिये हम इस अद्‌भुत विश्वको देख रहे हैं।

*

लज्जासे अत्युत्तम परिणाम प्राप्त होते हैं और सौंदर्यबोध तथा नैतिकता दोनोंमें ही हम उसकी बिलकुल उपेक्षा नहीं कर सकते; परंतु इस सबके बावजूद यह दुर्बलताका ही एक चिह्न और अज्ञानका ही एक प्रमाण है।

*

अतिप्राकृत वह चीज है जिसके स्वभावको हमने नहीं प्राप्त किया है या अभीतक नहीं जाना है, अथवा जिसे प्राप्त करनेका साधन अभीतक हमने नहीं आयत्त किया है। चमत्कारोंके लिये सर्वसाधारण लोगोंकी रुचि इस बातका चिह्न है कि मनुष्यका आरोहण अभीतक पूर्ण नहीं हुआ है।

*

अतिप्राकृतपर अविश्वास करना युक्तिसंगतता और समझदारी है; परंतु उसपर विश्वास करना भी एक प्रकारकी बुद्धिमत्ता ही है।

*

उच्च कोटिके संतोंने चमत्कार किये हैं; उच्चतर कोटिके संतोंने उनकी निंदा की है; उच्चतम कोटिके संतोंने उनकी निंदा भी की है और उन्हें किया भी है।

*

---

[1] फ्रांसके व्यंग्य-लेखक।

अपनी आंखें खोलो और देखो कि वास्तवमें जगत् क्या है और भगवान् क्या हैं; व्यर्थ और मधुर कल्पनाओंसे कोई संबंध मत रखो।

*

इस जगत्को मृत्युने रचा था जिसमें कि वह जी सके। क्या तू मृत्युको मिटा देगा? तब तो जीवन भी समाप्त हो जायगा। तू मृत्युको मिटा नहीं सकता, किंतु तू उसे महत्तर जीवनमें रूपांतरित कर सकता है।

*

इस जगत्को क्रूरताने बनाया था जिसमें कि वह प्रेम कर सके। क्या तू क्रूरताको विनष्ट कर देगा? तब तो प्रेम भी नष्ट हो जायगा। तू क्रूरताको नष्ट नहीं कर सकता, परंतु उसे तू उसके विरोधी तत्त्व-में, तीक्ष्ण प्रेम और आनंदोल्लासमें परिवर्तित कर सकता है।

*

इस जगत्को अज्ञान तथा भूल-भ्रांतिने गढ़ा था जिसमें कि वे जान सकें। क्या तू अज्ञान और भूल-भ्रांतिको दूर कर देगा? तब तो ज्ञान भी विलीन हो जायगा। तू अज्ञान और भूल-भ्रांतिको दूर नहीं कर सकता, परंतु तू उन्हें विशुद्ध और प्रोज्ज्वल ज्ञानमें परि-णत कर सकता है।

*

यदि केवल जीवन ही होता और मृत्यु न होती तो फिर अमरत्व नामकी कोई चीज ही न होती; यदि केवल प्रेम ही होता और क्रूरता न होती तो फिर आनंद केवल एक प्रकारका मंदा और क्षण-स्थायी उल्लास ही रह जाता; यदि केवल ज्ञान ही होता और अज्ञान न होता तो फिर हमारी अधिक-से-अधिक पहुंच एक सीमित यौक्तिक-ता और इहलौकिक विज्ञतातक ही होती, उससे परे हम जा ही नहीं पाते।

*

मृत्यु रूपांतरित होकर बन जाती है जीवन और वही है अमरत्व; क्रूरता परिवर्तित होकर बन जाती है प्रेम और वही है असह्य आनंदातिरेक; अज्ञान बदलकर बन जाता है प्रकाश और वह ज्ञान और प्रज्ञाके भी परे चला जाता है।

*

दुःख-दर्द हमारी दिव्य जननीका स्पर्श है जो हमें यह सिखाती है कि किस तरह सहन किया जाता और आनंदमें वर्द्धित हुआ जाता है। उस माताकी शिक्षाके तीन स्तर हैं — सबसे पहले सहनशीलता, फिर अंतरात्माकी समता और सबसे अंतमें परमानंद।

*

सभी त्याग एक ऐसे महत्तर आनंदके लिये किये जाते हैं जिसे अभीतक हमने हस्तगत नहीं किया है। कुछ लोग तो अपना कर्तव्य पूरा करनेका आनंद पानेके लिये त्याग करते हैं, कुछ शांतिका आनंद पानेके लिये, कुछ भगवान्‌का आनंद पानेके लिये और कुछ आत्म-पीड़नका आनंद पानेके लिये त्याग करते हैं। परंतु इससे कहीं अच्छा यह है कि तुम विश्वातीत स्वतंत्रता तथा अक्षुब्ध परमानंदतक पहुंच जानेके लिये त्याग करो।

*

एकमात्र कामनाके परिपूर्ण त्यागके द्वारा अथवा कामनाकी परिपूर्ण तुष्टिके द्वारा ही भगवान्‌के संपूर्ण आलिंगनका अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि इन दोनों ही तरीकोंसे आवश्यक शर्त्त पूरी हो जाती है, — कामनाका नाश हो जाता है।

*

शास्त्रके सत्यको अपने अंतरात्माके अंदर अनुभव कर; फिर पीछे, यदि तू चाहे तो, बुद्धिद्वारा अपने अनुभवकी परीक्षा कर और उसका वर्णन कर और उसके बाद भी अपने वर्णनपर अविश्वास कर, पर अपने अनुभवपर कभी अविश्वास न कर।

*

जब तू अपने आंतरात्मिक अनुभवको प्रस्थापित करे और दूसरोंके भिन्न आंतरात्मिक अनुभवको अमान्य करे तब तू जान ले कि भगवान् तुझे मूर्ख बना रहे हैं। क्या तू अपने अंतरात्माके पर्देके पीछे उनका आत्मानंदपूर्ण हास्य नहीं सुनता ?

*

सत्यदर्शन प्रत्यक्ष दर्शन, प्रत्यक्ष श्रवण या सत्यकी अनुप्रेरित स्मृति है, दृष्टि, श्रुति, स्मृति है; यह उच्चतम अनुभूति है और नये सिरेसे किये जानेवाले अनुभवद्वारा सर्वदा ही प्राप्य है। शास्त्रोंका वचन इस कारण हमारा सर्वोत्तम प्रमाण नहीं है कि उसे भगवान्ने कहा था, बल्कि इसलिये है कि अंतरात्माने उसे देखा था।

*

शास्त्रके वचन अभ्रांत हैं; शास्त्रकी जो व्याख्या हृदय और बुद्धि करती हैं बस उसीमें भूल-भ्रांतिको अपना स्थान प्राप्त होता है।

*

अपने धार्मिक विचार और अनुभवमेंसे सब प्रकारकी नीचता, संकीर्णता और छिछलेपनको निकाल फेंक। विशालतम क्षितिजोंसे भी कहीं अधिक विशाल बन, उच्चतम कंचनजंगासे भी कहीं अधिक उच्च, गभीरतम सागरोंसे भी कहीं अधिक गभीर बन।

*

भगवान्की दृष्टिमें समीप या दूर नहीं है, वर्तमान, भूत या भविष्य नहीं है। ये चीजें तो महज उनके जगच्चित्रके लिये एक सुविधाजनक परिपेक्षण (Perspective) हैं।

*

इंद्रियोंके लिये यह सदा ही सत्य है कि सूर्य पृथ्वीके चारों ओर घूमता है; यह बुद्धिके लिये मिथ्या है। बुद्धिके लिये यह सर्वदा ही सत्य है कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है; यह सर्वोच्च दृष्टिके

लिये मिथ्या है। न तो पृथ्वी घूमती है न सूर्य; बस, सूर्य-चेतना तथा पृथ्वी-चेतनाके संबंधमें एक परिवर्तन होता है।

*

विवेकानंदने, संन्यासका गुणगान करते हुए, कहा है कि सारे भारतीय इतिहासमें केवल एक ही जनक हुए हैं। पर बात ऐसी नहीं है, क्योंकि जनक महज किसी एक व्यक्तिका नाम नहीं है, बल्कि आत्म-शासक राजाओंके एक वंशका नाम है तथा एक आदर्शका विजय-निनाद है।

*

लाखों गैरिकधारी संन्यासियोंमें कितने सिद्ध हैं, पूर्ण हैं? कुछ थोड़ेसे सिद्ध तथा सिद्धिके समीप पहुंचनेवाले अनेक लोग ही किसी आदर्शको सत्य सिद्ध करते हैं।

*

सैकड़ों ही संन्यासी सिद्ध, पूर्ण हुए हैं, क्योंकि संन्यासका बहुत अधिक प्रचार किया गया है और असंख्य लोगोंने इसका अभ्यास किया है; बस, यही बात जीवन्मुक्तिके आदर्शपर भी लागू कर दी जाय और फिर हमें सैकड़ों जनक प्राप्त हो जायेंगे।

*

संन्यासका एक निर्दिष्ट वेश-भूषा और बाह्य चिह्न होता है; अतएव लोग समझते हैं कि वे उसे आसानीसे पहचान सकते हैं; परंतु किसी जनककी आंतरिक मुक्तावस्था अपना कोई डंका नहीं पीटती और वह सांसारिक पहनावा ही पहनती है; उसके सामने नारद भी विभ्रांत हो गये थे।

*

मुक्त होकर संसारमें रहना और फिर भी साधारण मनुष्योंका जीवन यापन करना बहुत कठिन है; परंतु यह कठिन है इसी कारण हमें इसके लिये प्रयास करना होगा और इसे सिद्ध करना होगा।

*

जब नारदने जनकके कार्योंका निरीक्षण किया तब उन देवर्षिने भी उन्हें एक भोगपरायण, संसारासक्त और लंपट प्राणी ही समझा। जबतक तू अंतरात्माको नहीं देख पाता तबतक तू भला यह कैसे कह सकता है कि यह मनुष्य मुक्त है या बद्ध ?

*

मनुष्य जिस स्तरतक पहुंच चुका है उससे ऊपरकी सभी चीजें उसे कठिन प्रतीत होती हैं और उसके अपने सहायताशून्य प्रयासके लिये कठिन हैं भी; परंतु मनुष्यके अंदर विद्यमान भगवान् जब ठीका ले लेते हैं तब वे सभी चीजें तुरत सरल और आसान बन जाती हैं।

*

सूर्यकी बनावट या बुध-ग्रहकी रूप-रेखाको देखना निस्संदेह एक बहुत बड़ा कार्य है; परंतु जब तेरे पास वह यंत्र होगा जो मनुष्यकी अंतरात्माको तुझे वैसे ही दिखा देगा जैसे कि तू कोई चित्र देखता है, तब तू भौतिक विज्ञानके आश्चर्यजनक कार्योंको बच्चोंके खिलौने समझकर उनपर हंसेगा।

*

अपनी सारी प्राप्तियोंके बावजूद ज्ञान एक शिशुके समान है; क्योंकि जब वह कोई चीज खोज निकालता है तब वह चिल्लाता और शोर मचाता हुआ सड़कोंपर इधर-उधर दौड़ता है; प्रज्ञा अपने कार्योंको बहुत दीर्घकालतक एक विचारपूर्ण और शक्तिशाली मौनताके अंदर छिपाये रखती है।

*

भौतिक विज्ञान बकवास करता है और इस तरह आचरण करता है मानों उसने समस्त ज्ञान अधिकृत कर लिया हो। प्रज्ञा, जब वह चलती है तब, अपने एकाकी पदक्षेपको अपरिमेय महासागरोंके तटपर प्रतिध्वनित होती हुई सुनती है।

*

घृणा एक गुप्त आकर्षणका ही चिह्न है जो स्वयं अपने-आपसे दूर भागनेके लिये उत्सुक तथा स्वयं अपने ही अस्तित्वको अस्वीकार

करनेके लिये पागल रहता है। वह भी भगवान्के जीवके अंदर उनकी ही एक लीला है।

*

स्वार्थपरायणता ही एकमात्र पाप, नीचता ही एकमात्र अधर्म और घृणा ही एकमात्र अपराध है। अन्य सभी चीजें आसानीसे शुभ वस्तुओंमें पलटी जा सकती हैं, पर ये तीनों चीजें बड़े हठके साथ देवत्वका विरोध करती हैं।

*

जगत् एक दीर्घ आवर्त्त-दशमलव है और उसका पूर्णांक है ब्रह्म। आवृत्तिकाल प्रारंभ और समाप्त होता हुआ प्रतीत होता है, पर भग्नांश अनंत होता है; इसका कभी अंत नहीं होगा और इसका कभी कोई वास्तविक प्रारंभ भी नहीं था।

*

वस्तुओंका 'आदि' और 'अंत' हमारी अनुभूतिको व्यक्त करने-वाले लौकिक शब्द हैं; अपने यथार्थ स्वरूपमें इन शब्दोंमें कोई सत्य नहीं है; न तो कहीं आदि है और न कहीं अंत।

*

"न तो ऐसा ही है कि मैं पहले कभी नहीं था या तू नहीं था या ये राजा नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब इसके बाद नहीं रहेंगे।" केवल ब्रह्म ही नहीं, वरन् ब्रह्ममें विद्यमान सभी जीव और वस्तुएं नित्य हैं; उनका सृजन और संहार तो हमारी बाहरी चेतनाके साथ खेला जानेवाला आंखमिचौलीका खेल है।

*

एकांतवासका प्रेम इस बातका लक्षण है कि तुममें ज्ञानकी खोज करनेकी प्रवृत्ति है; परंतु स्वयं ज्ञान केवल तभी प्राप्त होता है जब हम भीड़-भाड़के अंदर, संग्राम और हाट-बाजारके अंदर एकांतताका स्थायी बोध प्राप्त कर लेते हैं।

*

जब तुम महान् कार्य कर रहे होते हो और विराट् परिणामोंको उत्पन्न कर रहे होते हो तब यदि तुम यह अनुभव कर सको कि तुम कुछ नहीं कर रहे हो तो फिर जानो कि भगवान्‌ने तुम्हारी आंखोंपर-से अपना पर्दा हटा लिया है।

*

जब तुम पर्वत-शृंगपर एकाकी, स्थिर और मौन बैठते हो तब यदि तुम उन क्रांतियोंको देख सको जिन्हें तुम परिचालित कर रहे हो, तो फिर यह कहा जा सकता है कि तुम्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त है और तुम नामरूपसे मुक्त हो गये हो।

*

अकर्मसे प्रेम करना मूर्खता है और अकर्मसे घृणा करना भी मूर्खता है; अकर्म नामकी कोई चीज ही नहीं है। बालुकापर पड़ा हुआ जड़ पत्थर भी, जिसे लोग योंही बेकार ठुकरा दिया करते हैं, विश्व-ब्रह्मांडपर अपना प्रभाव उत्पन्न करता रहता है।

*

यदि तू अपने ही मतद्वारा उल्लू न बनना चाहे तो सबसे पहले यह देख कि किस दृष्टिसे तेरा विचार सत्य है, फिर इस बातपर विचार कर कि किस दृष्टिसे उससे उलटा तथा उसका विरोधी विचार भी सत्य है; अंतमें, इन विभेदोंका कारण तथा भगवान्‌के सामंजस्यकी कुंजी ढूंढ़ निकाल।

*

कोई मत न तो सत्य होता है न मिथ्या, बल्कि केवल जीवनके लिये लाभदायक या हानिकारक होता है; क्योंकि वह कालकी सृष्टि होता है और कालके साथ ही वह अपना प्रभाव और मूल्य खो देता है। तू मत-मतांतरसे ऊपर उठ जा और चिरस्थायी प्रज्ञाकी खोज कर।

*

जीवनके लिये अपने मतका व्यवहार कर; परंतु उसे अपने अंतरात्माको जंजीरोंसे बांधने मत दे।

*

प्रत्येक विधान, चाहे जितना भी सर्वग्राही या स्वैराचारी क्यों न हो, कहीं-न-कहीं किसी ऐसे विरोधी विधानसे उसका सामना होता है जिससे उसका कार्य रोका जा सकता, बदला जा सकता, नष्ट किया जा सकता या टाला जा सकता है।

*

प्रकृतिका सबसे अधिक बाध्यकारी विधान है महज एक सुनिश्चित पद्धति जिसे प्रकृतिके अधीश्वरने रचा है और जिसका वह निरंतर उपयोग करते हैं; परमात्माने उसे बनाया था और परमात्मा उसको अतिक्रम भी कर सकते हैं, पर सर्वप्रथम हमें अपने कारा-गृहके द्वारोंको खोलना होगा तथा परमात्माकी अपेक्षा प्रकृतिमें कम जीवन यापन करना सीखना होगा।

*

विधान एक प्रक्रिया है अथवा एक सूत्र है; परंतु अंतरात्मा प्रक्रियाओंका प्रयोग करता और सूत्रोंके परे चला जाता है।

*

प्रकृतिके अनुरूप जीवन यापन करो — यही है पश्चिमका सिद्धांत; पर किस प्रकृतिके अनुरूप, शरीरकी प्रकृतिके या उस प्रकृति-के अनुरूप जो शरीरको अतिक्रम करती है? सबसे पहले इसी बात-का हमें निर्णय कर लेना होगा।

*

हे अमृतके पुत्र! तू प्रकृतिके अनुरूप जीवन यापन मत कर, बल्कि भगवान्‌के अनुरूप कर; और प्रकृतिको भी अपने अंत:स्थित देवताके अनुरूप जीवन यापन करनेके लिये विवश कर।

*

भाग्य उन सब चीजोंका देश और कालके बाहर भगवान्‌का

पूर्वज्ञान है जो देश और कालमें अभी घटित होंगी; जो कुछ उन्होंने पहलेसे देखा है उसे ही शक्तियोंके संघर्षके द्वारा 'शक्ति' और 'प्रयोजन' कार्यान्वित करते हैं।

*

चूंकि भगवान्ने प्रत्येक वस्तुको पहलेसे जाना और उसकी इच्छा की है, इसलिये तुझे निष्क्रिय वनकर वैठ नहीं जाना चाहिये और उनके विधानकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि तेरा कार्य भी उनकी एक प्रधान कार्यकरी शक्ति है। अतएव उठ और कार्यमें लग जा, पर अहंमन्यताके साथ नहीं, वल्कि उस घटनाके परिस्थित्यनुकूल यंत्र तथा वाह्य कारणके रूपमें जिसे पहलेसे ही भगवान्ने निर्धारित कर रखा है।

*

जव मैं कुछ नहीं जानता था, तव मैं दोषी, पापी और अपवित्र लोगोंसे घृणा करता था, क्योंकि मैं स्वयं दोष, पाप और अशुद्धिसे भरा था; परंतु, जव मैं शुद्ध-पवित्र हो गया और मेरी आंखें खुल गयीं तव मैं अपने अंतरमें चोर और हत्यारेके सामने नतमस्तक हो गया तथा वार-वनिताके चरणोंकी पूजा की; क्योंकि मैंने देखा कि इन आत्माओंने पापके प्रचंड वोझको स्वीकार किया है तथा विश्वसागरसे मथित विषके सर्वाधिक अंशको हम सवके लिये पान कर लिया है।

*

असुर देवताओंसे भी अधिक वलशाली होते हैं, क्योंकि उन्होंने भगवान्के सामने स्वीकार किया है कि वे भगवान्के कोप और शत्रुभावका बोझ वहन करेंगे और उनका सामना करेंगे; देवगण केवल भगवान्के प्रेम तथा सुखद आनंदके मधुर भारको ही स्वीकार करनेमें समर्थ हुए।

*

जव तुम यह देखनेमें समर्थ होते हो कि किस तरह चरम आनंद

पानेके लिये दुःख-कष्ट आवश्यक होता है, एकांत सफलताके लिये विफलता और चूडांत क्षिप्रताके लिये विलंबका होना आवश्यक होता है, तब तुम भगवान्‌की क्रियाका कुछ अंश, चाहे जितने धीमे और अस्पष्ट रूपमें क्यों न हो, समझना आरंभ कर सकते हो।

*

प्रत्येक रोग स्वस्थताके किसी नवीन आनंदकी ओर जानेका एक पथ है, प्रत्येक अमंगल और दुःख-ताप प्रकृतिका किसी अधिक तीव्र आनंद और मंगलके लिये स्वर मिलाना है, प्रत्येक मृत्यु विशालतम अमरत्वकी ओर एक उद्‌घाटन है। क्यों और कैसे यह बात ऐसी हो सकती है — यह भगवान्‌का गुप्त रहस्य है जिसकी तहमें केवल अहंकार-विमुक्त अंतरात्मा ही पैठ सकता है।

*

तेरा मन या तेरा शरीर क्यों यंत्रणा भोग रहा है? क्योंकि पर्देके पीछे विद्यमान तेरा अंतरात्मा उस यंत्रणाकी इच्छा करता है या उसमें आनंद मानता है; पर तू यदि चाहे — और अपने संकल्प-पर डटा रहे — तो तू आत्माके अविमिश्र आनंदका विधान अपने निम्नतर अंगोंपर लाद सकता है।

*

ऐसा कोई लौह-कठोर या अलंघ्य विधान नहीं है कि कोई विशिष्ट संस्पर्श दुःख या सुख उत्पन्न करेगा ही; सच पूछा जाय तो तेरे अंगों-के बाहरसे ब्रह्मका जो धक्का या दबाव उनके ऊपर आता है उसका मुकाबला तेरा अंतरात्मा जिस तरीकेसे करता है, वह तरीका ही इन दोनों प्रतिक्रियाओंको उत्पन्न करता है।

*

तेरे अंदरकी अंतरात्म-शक्ति जब बाहरसे आनेवाली वैसी ही शक्तिके संस्पर्शमें आती है तब वह मानसिक अनुभव तथा शारीरिक अनुभवके मूल्योंके अनुरूप उस संस्पर्शकी मत्राओंको सुसमंजस नहीं कर पाती; इसी कारण तुझे दुःख, शोक या अशांति होती है। विश्व-

शक्तिके प्रश्नोंका जो उत्तर तेरे अंदरकी शक्ति प्रदान करती है उसे यदि तू उपयुक्त रूपमें व्यवस्थित करना सीख जाय तो तू देखेगा कि दुःख सुखदायी वन रहा है अथवा विशुद्ध आनंदमें परिवर्तित हो रहा है। यथोचित संवंध ही आनंदमय होनेकी शर्त्त है, ऋतम् ही आनंदकी कुंजी है।

*

अतिमानव कौन है? वह है जो इस जड़ाभिमुखी भग्न मनोमय मानव-सत्तासे ऊपर उठ सके तथा एक दिव्य शक्ति, एक दिव्य प्रेम और आनंद एवं एक दिव्य ज्ञानके अंदर पहुंचकर अपने-आपको विश्व-भावापन्न और दिव्यभावापन्न वना सके।

*

यदि तू इस संकीर्ण मानवीय अहंभावको वनाये रखे और अपनेको अतिमानव समझें तो तू महज अपनी ही अहंताके फेरमें पड़ा हुआ मूढ़ है, अपनी निजी शक्तिके हाथोंका खिलौना और अपनी निजी भूल-भ्रांतियोंकी कठपुतली है।

*

नीत्शेने अतिमानवको इस रूपमें देखा मानो ऊंट स्थितिसे वाहर निकलनेवाला कोई सिंह-आत्मा हो, पर अतिमानवका सच्चा आभिजातिक चिह्न और लक्षण तो यह है कि सिंह कामधेनुके ऊपर खड़े हुए ऊंटकी पीठपर अवस्थित हो। यदि तू समस्त मनवजातिका दास न वन सके तो तू उसका स्वामी वननेके भी योग्य नहीं है, और यदि तू अपने स्वभावको वशिष्ठकी कामधेनु न वना सके जिसके थनसे सारी मनुष्यजाति अपनी अभीप्सित वस्तु ले सके तो भला तेरे सिंह-सरीखे अतिमानवत्वका क्या लाभ है?

*

संसारके सम्मुख निर्भयता और प्रभुतामें सिंह वनो; धैर्य और उपयोगितामें ऊंट वनो; अचंचलता, सहनशीलता और मातृसुलभ वदान्यतामें गाय वनो। भगवान्‌के दिये सभी सुखोंपर टूट पड़ो जैसे

कि सिंह अपने शिकारपर टूट पड़ता है, परंतु आनंद-विलासके उस अनंत क्षेत्रमें लोट-पोट करने और चरनेके लिये समस्त मनुष्यजातिको भी ले आओ।

## कला

यदि कलाका कार्य महज प्रकृतिका अनुकरण करना ही हो, तब तो सभी चित्रशालाओंको जला डालो और उनके वदले छाया-चित्र (Photography) वनानेके लिये कार्यालय खोल दो। चूंकि कला उस चीजको प्रकट करती है जिसे प्रकृति छिपाये रखती है, इसी कारण एक छोटेंसे चित्रका मूल्य लखपतियोंके समस्त जवाहरातों तथा राजाओंके खजानोंसे भी कहीं अधिक होता है।

*

यदि तुम केवल दृश्य प्रकृतिका ही अनुकरण करो तो तुम या तो किसी शवका चित्र या कोई निर्जीव खाका अथवा कोई दानवाकृति ही आंक डालोगे; सत्य तो उस वस्तुमें रहता है जो दृश्य और इंद्रियगोचर वस्तुओंके पीछे और परे रहती है।

*

ऐ कवि! ऐ कलाकार! यदि तू केवल प्रकृतिके सामने दर्पण पकड़े रखे तो क्या तू यह समझता है कि प्रकृति तेरे कार्यपर आनंद मनायेगी? वह तो वल्कि अपना मुंह ही फेर लेगी। किस चीजके लिये भला तू उसके सामने दर्पण पकड़े रखता है? स्वयं उसके लिये? नहीं, बल्कि एक जीवनहीन रेखाचित्र और प्रतिविंवके लिये, एक छायामय अनुकरणके लिये। सच पूछो तो तुझे प्रकृतिके गुप्त अंतरात्माको पकड़ना होगा, तुझे चिरदिन शाश्वत प्रतीकमें विद्यमान सत्यका पीछा करना होगा, और उसे कोई दर्पण तेरे लिये पकड़ नहीं सकेगा, उस प्रकृतिके लिये भी नहीं जिसे तू खोजता है।

*

मैं यूनानियोंकी अपेक्षा शेक्सपीयरके अंदर एक अधिक महान् और अधिक सुसमंजस सार्वभौम कलाकार पाता हूं। 'लैंसलाट गोब्बो' (Lancelot Gobbo)[1] और उसके कुत्तेसे लेकर 'लियर' (Lear)[1] और 'हैमलेट' (Hamlet)[1] तक उसकी सभी सृष्टियां सार्वभौम हैं।

*

यूनानियोंने व्यक्तिके समस्त सूक्ष्मतर मनोभावोंकी उपेक्षा कर सार्वभौमताकी खोज की; शेक्सपीयरने व्यक्तिगत स्वभावके अत्यंत विरल ब्योरोंको विश्वजनीन बनाकर कहीं अधिक सफलताके साथ सार्वभौमताकी खोज की। जिस चीजका व्यवहार प्रकृति हमसे अनंत-को छिपानेके लिये करती है उसीका उपयोग शेक्यपीयरने मानवता-की आंखोंके सम्मुख मनुष्यमें विद्यमान 'अनंतगुण' को प्रकट करनेके लिये किया।

*

शेक्सपियरने ही प्रकृतिके सामने दर्पण पकड़ रखनेके रूपकका आविष्कार किया था, पर वही एकमात्र कवि भी था जो कभी प्रति-लिपि, छायाचित्र या प्रतिकृति उतारनेके लिये राजी नहीं हुआ। जो पाठक फालस्टाफ ( Falstaff )[1], मैकवेथ (Macbeth)[1], लियर (Lear) या हमलेट (Hamlet) में प्रकृतिका अनुकरण देखता है उसे या तो अंतरात्माकी आंतरिक आंख प्राप्त नहीं है अथवा वह किसी प्रचलित सूत्रद्वारा विमोहित हो गया है।

*

भला तू भौतिक प्रकृतिके अंदर कहां फालस्टाफ ( Falstaff ) मैकवेथ (Macbeth) या लियर (Lear) को पायेगा? उसके पास उनकी छायाएं और संकेत तो हैं, पर स्वयं वे तो उस (प्रकृति) से बहुत ऊंचे हैं।

*

---

[1] ये पांचों शेक्सपीयरके नाटक हैं।

केवल दो तरहके व्यक्तियोंके लिये आशा है, एक तो, उस व्यक्तिके लिये जिसने भगवान्‌का स्पर्श अनुभव किया है और उसकी ओर आकर्षित हुआ है तथा दूसरे, उस व्यक्तिके लिये जो संदेहवादी जिज्ञासु तथा अपने मतसे संतुष्ट नास्तिक है; परंतु सभी धर्मोंके कर्म-कांडियों तथा स्वतंत्र चिंतनकी रट लगानेवाले शुक पक्षियोंका जहांतक प्रश्न है, वे तो ऐसे मृतात्मा हैं जो एक ऐसी मृत्युका अनुसरण करते हैं जिसे वे जीवंत कहते हैं।

*

एक मनुष्य एक वैज्ञानिकके पास आया और उसने उससे शिक्षा लेनी चाही; उस शिक्षकने उसे सूक्ष्म-दर्शक यंत्र (Microscope) तथा दूरदर्शक यंत्र (Telescope) में दिखायी देनेवाली चीजोंको दिखाया, पर उस आदमीने हंसते हुए कहा, "यह तो स्पष्ट ही है कि जिस शीशेका व्यवहार आप माध्यमके रूपमें कर रहे हैं उसी शीशेने आंखोंके सामने यह सब इंद्रजाल फैला दिया है; मैं तबतक विश्वास नहीं कर सकता जबतक कि आप हमारी खली दृष्टिके सामने इन सब आश्चर्योंको न दिखा दें।" तब वैज्ञानिकने उसके सामने बहुतेरे आनुषंगिक तथ्यों तथा प्रयोगोंके द्वारा यह सिद्ध किया कि उसका ज्ञान विश्वसनीय है, पर फिर उस आदमीने मुस्कराते हुए कहा, "जिसे आप प्रमाण कहते हैं उसे मैं संयोग कहता हूं, संयोगोंकी संख्या प्रमाणका निर्माण नहीं करती; और आपके प्रयोगोंका जहांतक प्रश्न है वे तो स्पष्ट ही असामान्य परिस्थितियोंसे प्रभावित हैं और वे प्रकृतिके एक प्रकारके पागलपनके अंग हैं।" जब उसके सामने गणितके परिणामोंको रखा गया तब तो वह क्रोधित होकर चिल्ला उठा, "निस्संदेह यह सब धोखा-धड़ी, प्रलाप तथा कुसंस्कार है; क्या आप मुझे यह विश्वास करा देनेकी कोशिश करेंगे कि ये निरर्थक दुर्बोध संख्याएं कोई सच्ची शक्ति और अर्थ रखती हैं ?" तब वैज्ञा-निकने उसे एकदम निकम्मा मूढ़ समझकर बाहर निकाल दिया; क्योंकि उसने स्वयं अपनी अस्वीकृतिकी पद्धति तथा स्वयं अपनी

नकारात्मक युक्ति-तर्ककी प्रणालीको ही नहीं समझा। अगर हम किसी निष्पक्ष और उदार मनकी खोजको अस्वीकार करना चाहें तो हम अपनी अस्वीकृतिको छिपानेके लिये अत्यंत आदरणीय लंबे-लंबे शब्द बराबर ही पा सकते हैं तथा ऐसे परीक्षण एवं शर्त्तें लाद सकते हैं जो खोजको असत्य सिद्ध कर देते हैं।

*

जब हमारा मन जड़तत्त्वमें विजड़ित होता है तब हम समझते हैं कि केवल जड़तत्त्व ही सत्य है; जब हम जड़ातीत चेतनामें पीछे हट आते हैं तब हम जड़तत्त्वको एक छद्मवेशके रूपमें देखते तथा यह अनुभव करते हैं कि केवल चेतनाके अंदरके जीवनको ही सद्वस्तु-का स्पर्श प्राप्त है। तब भला इन दोनोंमेंसे कौन सत्य है? मालूम नहीं, भगवान् जानें। परंतु जिस मनुष्यको दोनों अनुभव हो चुके हैं वह आसानीसे कह सकता है कि कौनसी अवस्था अधिक ज्ञानदायक, अधिक सामर्थ्यपूर्ण तथा अधिक आनंदमय है।

*

मैं विश्वास करता हूं कि भौतिक चेतनाकी अपेक्षा अतिभौतिक चेतना कहीं अधिक सत्य है। क्योंकि मैं दूसरीके अंदर यह जानता हूं कि पहलीमें मुझसे क्या छिपा हुआ है तथा साथ ही जड़तत्त्वके अंदर मन जो कुछ जानता है उसे भी मैं अधिकृत कर सकता हूं।

*

स्वर्ग और नरक केवल आत्माकी चेतनामें अस्तित्व रखते हैं। ठीक है, पर उसी तरह अस्तित्व रखते हैं यह पृथ्वी और उसके भूखंड और समुद्र और खेत और रेगिस्तान और पहाड़ और नदियां भी। समूचा जगत् ही परमात्माके दर्शनकी अभिव्यक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

*

मात्र एक ही आत्मा और एक ही सत् है; अतएव हम सब बस एक ही विषय-वस्तुको देखते हैं; परंतु एक आत्म-सत्ताके अंदर मन

और अहंकारकी वहुतेरी गांठें हैं; अतएव हम सव एकमेव विषय-वस्तुको ही विभिन्न प्रकारके आलोक और छायामें देखते हैं।

*

मायावादी (Idealist) भूल करता है; सच पूछो तो मनने इन सव जगतोंकी सृष्टि नहीं की थी, वल्कि जिसने मनकी सृष्टि की थी उसीने उनकी भी सृष्टि की थी। मन केवल गलत रूपमें देखता है, क्योंकि जो कुछ सृष्ट हुआ है उसे वह आंशिक रूपमें तथा एक-एक ब्योरेको लेकर देखता है।

*

ऐसा ही रामकृष्णने कहा था और ऐसा ही विवेकानंदने कहा था। हां, परंतु मुझे उन सत्योंको भी जान लेने दो जिन्हें अवतारने वाणीवद्ध नहीं किया और पैगंवरने अपनी शिक्षाओंमें अंतर्भुक्त नहीं किया। मनुष्यके विचारने जो कुछ कभी भी चिंतन किया है और मनुष्यकी जिह्वाने जो कुछ कभी भी उच्चारित किया है उससे वहुत अधिक सर्वदा ही भगवान्‌में वना रहेगा।

*

रामकृष्ण क्या थे? मानव-शरीरमें अभिव्यक्त भगवान्; परंतु पीछेकी ओर अपनी अनंत नैर्व्यक्तिकता तथा अपने विश्वमय व्यक्तित्वके साथ स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं। और विवेकानंद क्या थे? शिवके नेत्रके एक उज्ज्वल कटाक्ष; परंतु उनके पीछे विद्यमान है वह भागवत दृष्टि जिससे वह उत्पन्न हुए और स्वयं शंकर उत्पन्न हुए और ब्रह्मा, विष्णु तथा सर्वातीत ॐ प्रकट हुए।

*

जो कृष्णको, नरमें अवस्थित नारायणको नहीं पहचानता वह भगवान्‌को संपूर्णतः नहीं जानता; जो केवल कृष्णको जानता है वह कृष्णको भी नहीं जानता; फिर यह विपरीत सत्य भी पूर्णतः सत्य है कि यदि तू एक नन्हें मुर्झाये हुए, कुरूप और सुगंधहीन पुष्पमें

संपूर्ण भगवान्‌को देख सके तो तूने उनके परम सत्यको आयत्त कर लिया है।

*

निस्सार दार्शनिक ज्ञानके व्यर्थ जालों तथा अनुर्वर बौद्धिकताकी सूखी धूलको त्याग दो। केवल वही ज्ञान पाने योग्य है जिसका उपयोग जीवंत आनंद प्राप्त करनेके लिये किया जा सके और जिसे स्वभाव, कर्म, रचना और सत्तामें व्यक्त किया जा सके।

*

जो ज्ञान तुझे प्राप्त है बस वैसा ही बन और उसीको जीवनमें उतार; तभी तेरा ज्ञान होगा तेरे अंदर विद्यमान जीवंत भगवान्।

*

क्रमविकास अभी समाप्त नहीं हुआ है; मन-बुद्धि ही प्रकृतिका अंतिम तत्त्व नहीं है, न चिंतनशील पशु ही उसकी सर्वोच्च रचना है। जैसे मनुष्य पशुमेंसे आविर्भूत हुआ, वैसे ही मनुष्यमेंसे अतिमनुष्य प्रकट हो रहा है।

*

कठोरतापूर्वक नियम पालन करनेकी शक्ति ही स्वाधीनताकी भित्ति है; इसी कारण अधिकांश साधनाओंमें जीवको अपने दिव्य स्वरूपकी पूर्ण स्वाधीनतामें ऊपर उठ जानेसे पहले अपने निम्नतर अंगोंमें विधि-विधानके अधीन रहना पड़ता तथा उसे जीवनमें संसिद्ध करना पड़ता है। जो साधनाएं स्वाधीनतासे आरंभ होती हैं वे केवल उन शक्तिधर मनुष्योंके लिये हैं जो स्वभावतः ही मुक्त हैं अथवा अपने पूर्व-जन्मोंमें अपनी स्वतंत्रता स्थापित कर चुके हैं।

*

जो स्वेच्छा-स्वीकृत विधानको स्वतंत्रतापूर्वक तथा पूर्णता और समझदारीके साथ पालन करनेमें पीछे रह जाते हैं, उन्हें दूसरोंकी इच्छाके अधीन रखना चाहिये। राष्ट्रोंकी पराधीनताका यह एक प्रधान कारण है। जब किसी शासकके पैरों-तले उनका ऊधमी

अहंकार कुचला जा चुकता है, तव उन्हें स्वतंत्रताद्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करनेके योग्य वननेका एक नवीन अवसर प्रदान किया जाता है अथवा, यदि उनमें शक्ति-सामर्थ्य होती है तो वे उसे स्वयं आयत्त कर लेते हैं।

*

हमारी असंस्कृत स्थितिमें स्वतंत्रताका अर्थ है दूसरोंके विधानको नहीं, वरन् स्वयं अपने ऊपर लादे हुए विधानको मानना। मात्र भगवान्‌के अंदर तथा आत्माकी प्रधानताके द्वारा ही हम पूर्ण स्वतंत्रताका उपभोग कर सकते हैं।

*

पाप और पुण्यका द्विविध विधान हमारे ऊपर इस कारण लाद दिया गया है कि अभी हमें वह आदर्श जीवन और आंतरिक ज्ञान नहीं प्राप्त है जो अंतरात्माको सहज-स्वाभाविक तथा अभ्रांत रूपसे उसकी आत्मपरिपूर्णताकी ओर ले जाता है। पाप-पुण्यका विधान हमारे लिये समाप्त हो जाता है जब भागवत सूर्य अपनी अनावृत गरिमाके साथ सत्य एवं प्रेममें स्थित अंतरात्माके ऊपर चमकता है। उस समय मूसाका स्थान ईसा, शास्त्रका स्थान वेद ले लेता है।

*

जब हम अज्ञानके बंधनोंमें जकड़े होते हैं तब भी अंतरस्थ भगवान् हमें सर्वदा ठीक-ठीक पथसे ही ले चलते हैं; परंतु उस हालतमें, यद्यपि लक्ष्य सुनिश्चित होता है, हम उसे चक्कर काटते हुए तथा गलत रास्तेमें भटकते हुए प्राप्त करते हैं।

*

योगमें 'क्रास' (+) सूचित करता है उस अंतरात्मा और प्रकृतिको जो अपने प्रगाढ़ तथा पूर्ण एकत्वको प्राप्त कर चुके हैं; परंतु अज्ञानकी गंदगियोंके अंदर हमारा पतन हो जानेके कारण यह दुःख-भोग और पवित्रीकरणका प्रतीक वन गया है।

*

ईसामसीह पवित्र बनानेके लिये जगत्में आये, पूर्ण बनानेके लिये नहीं। स्वयं उनको भी यह भविष्य-ज्ञान प्राप्त हो गया था कि उनका जीवन-कार्य असफल हो जायगा तथा उन्हें फिरसे भगवान्का खड्ग लेकर उसी जगत्में वापस आनेकी आवश्यकता होगी जिसने उनको अस्वीकार कर दिया था।

*

मुहम्मदका मिशन आवश्यक था, अन्यथा हम आत्मशुद्धिके अपने प्रयासकी अतिरंजनाके कारण इस विचारके साथ ही इतश्री कर देते कि पृथ्वी केवल साधु-संन्यासियोंके लिये ही अभिप्रेत है तथा नगरोंका निर्माण रेगिस्तानकी डयोढ़ीके रूपमें ही हुआ था।

*

आखिरकार अंतमें प्रेम और शक्ति एक साथ मिलकर जगत्की रक्षा कर सकते हैं, पर केवल प्रेम या केवल शक्ति नहीं। इसी कारण ईसाको एक दूसरे आविर्भावकी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी तथा मुहम्मदका धर्म, जहां वह पंगु नहीं है, इमामोंके द्वारा किसी मेहदीके आनेकी प्रतीक्षा करता है।

*

नियम-कानून जगत्की रक्षा नहीं कर सकता, इसीलिये मूसाके बनाये विधान मानवताके लिये मर गये हैं तथा ब्राह्मणोंके शास्त्र दूषित और म्रियमाण हो रहे हैं। जो विधान स्वतंत्रताके अंदर मुक्त कर दिया जाता है वही मुक्तिदाता बन जाता है। पंडित नहीं, बल्कि योगी होनेकी आवश्यकता है, संन्यास नहीं, बल्कि कामना, अज्ञान तथा अहंभावका आंतरिक परित्याग करना आवश्यक है।

*

एक बार विवेकानंदने भी भावावेशमें आकर इस मिथ्या सिद्धांतको स्वीकार कर लिया था कि साकार भगवान्को मानना घोर अनैतिकता है जिसकी अनुमति नहीं दी जा सकती और सभी भले आदमियोंका यह कर्तव्य है कि वे उन (भगवान्) का विरोध करें। परंतु

कोई सर्वशक्तिमान् अतिनैतिक संकल्पशक्ति और बुद्धि यदि जगत्का संचालन करती हो तो निश्चय ही उनका विरोध करना असंभव है; हमारा विरोध महज उन्हींके उद्देश्योंको पूरा करेगा और वास्तवमें वह उन्हींके द्वारा निर्देशित होगा। अतएव उन्हें तिरस्कृत या अस्वीकृत करनेके बदले क्या उनकी खोज करना और उन्हें जानना कहीं अधिक अच्छा नहीं है?

*

अगर हम भगवान्को जानना चाहें तो हमें अपने अहंकारपूर्ण तथा अज्ञानमय मानवीय मानदंडोंका त्याग करना होगा अथवा उन्हें उन्नत और सार्वभौम बनाना होगा।

*

चूंकि एक भला मनुष्य मर जाता या असफल होता है और बुरे लोग जीते रहते और विजयी होते हैं, इसलिये क्या भगवान् बुरे हैं? इसमें मैं कोई कार्य-कारण-संबंध नहीं देखता। सबसे पहले तो मुझे यह प्रतीति हो जानी चाहिये कि मृत्यु और असफलता अशुभ हैं; मैं कभी-कभी सोचता हूं कि जब वे आती हैं तब वे उस समय हमारे लिये परम शुभ होती हैं। परंतु हम अपने हृदयों और स्नायुओंके धोखेमें रहते हैं और यह तर्क करते हैं कि जिसे वे पसंद नहीं करते या नहीं चाहते वह निस्संदेह एक बुरी वस्तु होगी।

*

जब मैं अपने विगत जीवनका सिंहावलोकन करता हूं तब मैं देखता हूं कि यदि मैं असफल न हुआ होता और कष्ट न भोगा होता तो मैंने अपने जीवनके चरम वरदानोंको ही खो दिया होता; फिर भी पीड़ा और विफलताके समय मैं दुर्भाग्यका अनुभव कर विकल हो गया था। चूंकि हम अपनी नाकके नीचे घटित महज एक घटनाके अतिरिक्त और कोई चीज नहीं देख पाते इसीलिये हम इस तरह रोते-धोते और हो-हल्ला मचाते हैं। शांत हो जाओ ऐ मूर्ख हृदयो!

अहंभावका वध कर डालो, विशालता तथा विश्वमयताकी दृष्टिसे देखना और अनुभव करना सीखो।

*

पूर्ण विश्वव्यापक दृष्टि तथा विश्वमय भाव समस्त भूल-भ्रांति तथा दुःख-कष्टकी दवा है; परंतु अधिकांश व्यक्ति केवल अपनी अहंताके क्षेत्रको ही विस्तारित करनेमें सफल होते हैं।

*

मनुष्य कहते हैं और सोचते हैं "अपने देशके लिये!", "मनुष्य-जातिके लिये!", "जगत्‌भरके लिये!", परंतु सच पूछो तो उनका मतलब होता है, "अपने देशके अंदर दृष्ट स्वयं अपने 'स्व' के लिये!", "मनुष्यजातिमें दृष्ट अपने 'स्व' के लिये!", "अपने ख्यालके अनुसार संसारके रूपमें कल्पित अपने 'स्व' के लिये!" वह एक प्रकारकी विस्तृति हो सकती है, पर वह मुक्ति नहीं है। विशालतामें निर्बन्ध होकर रहना और एक विशाल कारागारमें बद्ध रहना — ये दोनों स्वतंत्रताकी एक जैसी अवस्थाएं नहीं हैं।

*

अपने पड़ोसीके अंदर विद्यमान भगवान्‌के लिये, स्वयं अपने अंदर विद्यमान भगवान्‌के लिये, अपने देशमें तथा अपने शत्रुके देशमें विद्यमान भगवान्‌के लिये, मनुष्यजातिमें विद्यमान भगवान्‌के लिये, वृक्ष, पत्थर और पशुमें विद्यमान भगवान्‌के लिये, जगत्‌में और जगत्‌से बाहर विद्यमान भगवान्‌के लिये जीवन धारण करो और तब समझो कि तुम स्वतंत्रताके सीधे पथपर हो।

*

क्षुद्रतर और वृहत्तर दोनों प्रकारके सनातनत्व हैं; क्योंकि सनातनत्व अंतरात्मासे संबंधित एक शब्द है और वह कालके अंदर भी विद्यमान रह सकता तथा साथ ही कालका अतिक्रमण भी कर सकता है। जब शास्त्र "शाश्वतीः समाः" कहते हैं तब उनका मतलब कालके एक दीर्घ प्रसार और स्थायित्वसे या प्रायः एक अपरिमेय कल्पसे

होता है; मात्र पूर्ण भगवान्‌में ही पूर्ण शाश्वतता है। फिर भी जब कोई भीतर प्रवेश करता है तब वह देखता है कि यथार्थमें सभी वस्तुएं शाश्वत हैं; कहीं अंत नहीं है और न कभी कोई आरंभ ही था।

*

जब तुम किसी दूसरेको मूर्ख कहते हो, जैसा कि तुम कभी-कभी अवश्य करते ही हो, तब उसके साथ ही यह भी मत भूलो कि तुम स्वयं भी सारी मनुष्यजातिमें सबसे बड़े मूर्ख रहे हो।

*

भगवान् मौकेपर मूर्ख बनना पसंद करते हैं; मनुष्य मौके और बेमौके भी मूर्ख बनता है। अंतर बस इतना ही है।

*

बौद्ध लोगोंकी दृष्टिमें एक चींटीको डूबनेसे बचा लेना एक साम्राज्य स्थापित करनेसे भी अधिक बड़ा कार्य है। इस विचारमें एक सत्य है, पर एक ऐसा सत्य है जिसे आसानीसे अतिरंजित किया जा सकता है।

*

एक गुणको,—करुणातकको,—अनुचित रूपमें अन्य सभी गुणों-से ऊंचा उठा देनेका तात्पर्य है अपने ही हाथोंसे प्रज्ञाकी आंखोंको बंद कर देना। भगवान् निरंतर एक समन्वयकी ओर अग्रसर होते रहते हैं।

*

जबतक तेरी अंतरात्मामें भेदभाव है तबतक तू दुःखी पशुओंके प्रति अपने दयाभावको बनाये रख सकता है; परंतु मानवता तुझसे किसी और महत्तर वस्तुको पानेकी अधिकारिणी है, वह तुझसे प्रेमकी, सहानुभूतिकी, बंधुत्वकी, समान व्यक्ति तथा भाईसे प्राप्त होनेवाली सहायताकी मांग करती है।

*

संसारका कल्याण करनेमें अशुभसे जो सहायता प्राप्त हुई है तथा कभी-कभी पुण्यात्माओंसे जो हानि पहुंची है, उससे कल्याण-कामी अंतरात्माको कष्ट पहुंचता है। परंतु न तो दुःखी होओ न विभ्रांत, बल्कि मानवताके साथ भगवान् जिन तरीकोंसे व्यवहार करते हैं उनकी खोज करो तथा उन्हें शांतिपूर्वक हृदयंगम करो।

*

भगवान्के विधानमें अशुभ नामकी कोई वस्तु नहीं है, बल्कि है केवल शुभ या उसके लिये तैयारी।

*

पुण्य और पाप इसलिये बनाये गये थे कि तेरा अंतरात्मा संघर्ष करे और प्रगति करे; परंतु परिणामोंका जहांतक संबंध है वे भगवान्के हाथोंमें हैं, जो पाप और पुण्यसे परे रहकर अपने-आपको चरितार्थ करते हैं।

*

अंतरमें निवास करो; बाह्य घटनाओंसे विचलित मत होओ।

*

दानशीलताके दिखावेके लिये अपने दानोंको सर्वत्र बिखेर मत दो; जिसे तुम सहायता करते हो उसे समझो और उससे प्रेम करो। अपने अंदर अपने अंतरात्माको वर्द्धित होने दो।

*

जब तुम्हारे संग गरीब हों तो गरीबोंकी सहायता करो; परंतु इस बातका भी ख्याल रखो और प्रयास करो कि तेरी सहायता पानेके लिये कोई गरीब ही न बना रह जाय।

*

भारतका प्राचीन सामाजिक आदर्श यह मांग करता था कि पुरोहित स्वेच्छापूर्वक सादा जीवन यापन करे, पवित्रता और विद्वत्तासे परिपूर्ण हो तथा समाजको निःशुल्क शिक्षा प्रदान करे, राजा युद्ध करे, शासन करे, दुर्बलोंकी रक्षा करे एवं युद्धक्षेत्रमें अपना जीवन

अर्पित कर दे, वैश्य व्यापार करे, उपार्जन करे तथा अपना उपार्जित धन मुक्तहस्त होकर समाजको वापस लौटा दे और शूद्र शेष समाजके लिये एवं भौतिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिये परिश्रम करे। शूद्रके दासत्वकी क्षतिपूर्तिके लिये उसने उसे आत्मत्यागके कर, रक्तके कर तथा धन-संपत्तिके करसे मुक्त कर दिया था।

*

दरिद्रताका होना एक अन्यायपूर्ण तथा कुव्यवस्थित समाजका प्रमाण है, और हमारी सार्वजनिक दानशीलता महज एक डाकूके विवेकका प्रथम और धीमा जागरण है।

*

हमारे प्राचीन महाकाव्यके रचयिता वाल्मीकि एक न्यायपरायण और प्रबुद्ध सामाजिक स्थितिके लक्षणोंमें केवल सार्वजनीन शिक्षा, नैतिकता तथा आध्यात्मिकताको ही नहीं वरन् इस बातको भी अंतर्भुक्त करते हैं कि ऐसा एक भी आदमी नहीं रह जाना चाहिये जो मोटा अन्न खानेके लिये बाध्य हो, ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होना चाहिये जो मुकुटहीन और राजतिलकविहीन हो, अथवा जो भोग-विलासका एक तुच्छ और हीन दास बनकर जीवन यापन करता हो।

*

श्रेणीगत या व्यक्तिगत रूपसे दरिद्रताका वरण करना महान् और उपकारी कार्य है पर इसे यदि विकृत रूपसे सर्वसामान्य या राष्ट्रीय आदर्शके रूपमें स्थापित किया जाय तो यह संहारक बन जाता है तथा जीवनसे उसकी समृद्धि और प्रसारताको छीनकर उसे निःस्व बना देता है।

*

नैसर्गिक शरीरके लिये जैसे रोग आवश्यक नहीं है वैसे ही सामाजिक जीवनके लिये दरिद्रताकी कोई आवश्यकता नहीं है; जीवनके अनुचित अभ्यास तथा समाजसंबंधी समुचित संगठनके विषयमें हमारा अज्ञान ही इन दोनों क्षेत्रोंमें परिहार्य विशृंखलाका भ्रमपूर्ण कारण हैं।

*

स्पार्टा (Sparta)[1] नहीं, एथेन्स (Athens)[2] मानवजातिका प्रगतिशील नमूना है। जब प्राचीन भारतका आदर्श था विशाल वैभव और अपार अर्थव्यय तब वह सबसे महान् राष्ट्र था। आधुनिक भारत सर्वसामान्य रूपसे वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होनेके कारण जीवनमें पूर्णतः दरिद्र बन गया है तथा दुर्बलता एवं पतनके गर्त्तमें डूब गया है।

*

यह स्वप्न मत देखो कि जब तुम भौतिक दरिद्रतासे मुक्त हो चुके हो तब सभी मनुष्य सर्वदा इसी तरह प्रसन्न और संतुष्ट रहेंगे अथवा मनुष्यसमाज अपनी बुराइयों, विपदाओं तथा समस्याओंसे छुट्टी पा जायगा। यह तो केवल प्रथम और निम्नतम आवश्यकता है। जबतक भीतरमें आत्मा अपूर्ण रूपसे संगठित रहेगा तबतक बाहरमें निरंतर अशांति, अव्यवस्था और विद्रोह बने रहेंगे।

*

यदि मनुष्यकी आत्मा दोषपूर्ण हो तो रोग शरीरमें निरंतर वापस आता रहेगा; क्योंकि मनके पाप शरीरके पापोंके गुप्त कारण होते हैं। उसी तरह जबतक किसी जातिका मन अहंकारके अधीन रहेगा तबतक समाजके अंदर रहनेवाले मनुष्यपर सर्वदा ही दारिद्र्य तथा संकट वापस आते रहेंगे।

*

मनुष्यके अहंकारसे स्वयं उसकी रक्षा करनेके लिये धर्म और दर्शनशास्त्र सर्वोत्तम हैं; तब तो अंतरस्थ स्वर्गका राज्य अपने-आप ही एक बाह्य दिव्य नगरीमें प्रतिफलित हो उठेगा।

*

---

[1]यूनानका एक प्राचीन नगर। यहांके लोग शारीरिक बलको ही बहुत प्रधानता देते थे।

[2]प्राचीन युगमें अत्यंत प्रसिद्ध यूनानकी राजधानी। यह अपने युगमें कला और विद्याका महान् केंद्र थी।

मध्ययुगीय ईसाई-धर्मने मनुष्यजातिसे कहा, "ऐ मनुष्य ! तू अपने पार्थिव जीवनमें एक अशुभ चीज है और ईश्वरके सामने एक कीट है; तो त्याग दे अपनी अहंता, एक भावी राष्ट्रके लिये जीवन यापन कर और ईश्वर तथा उनके पुरोहितके अधीन हो जा।" इसके परिणाम मनुष्यजातिके लिये अति-उत्तम नहीं हुए। आधुनिक ज्ञान मनुष्यजातिसे कहता है, "ऐ मनुष्य ! तू एक क्षणजीवी पशु है और प्रकृतिके लिये एक चींटी और एक केंचुएसे अधिक कुछ नहीं है, विश्वके अंदर महज एक अनित्य बिंदु है। तो फिर राष्ट्रके लिये जीवन यापन कर और एक चींटीकी तरह सुशिक्षित शासक तथा सुदक्ष वैज्ञानिककी अधीनता स्वीकार कर।" क्या यह शिक्षा किसी अंशमें पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक सफलता प्राप्त करेगी ?

*

बल्कि वेदांत कहता है, "ऐ मनुष्य ! तू स्वभावतः और तत्त्वतः भगवान्‌के साथ एक है, अपने साथी मनुष्योंके साथ एक आत्मा है। तो फिर जाग और अपनी विशुद्ध दिव्यतातक अग्रसर हो, अपने अंदर तथा दूसरोंके अंदर विद्यमान भगवान्‌के लिये जीवन यापन कर।" यही शिक्षा जो केवल थोड़ेसे लोगोंको दी गयी थी, अब समूची मनुष्यजातिको प्रदान की जानी चाहिये, जिससे कि वह मुक्त हो जाय।

*

मनुष्यजाति सर्वदा अधिकसे अधिक प्रगति तभी करती है जब वह प्रकृतिके सामने अपना महत्त्व, अपनी स्वाधीनता तथा अपनी विश्वव्यापकताको अधिकसे अधिक प्रस्थापित करती है।

*

पशु-मानव धुंधला प्रारंभ-बिंदु है, आधुनिक प्राकृत मानव, बहु-विध और जटिल मानव मध्य-पथ है, पर अतिप्राकृत मानव हमारी मानव-यात्राका ज्योतिर्मय और परात्पर लक्ष्य है।

*

जब तुम अपने प्रत्येक विचार और कार्यमें, कला, साहित्य और जीवनमें, अपने परिवार, राजतंत्र और समाजमें, धनोपार्जन, धनसंग्रह या धनव्यय करनेमें एकमेव अमर सत्ताका, उसके निम्नतर मर-स्वरूपके अंदर, प्रतिरूप बन जाने और उसे अभिव्यक्त करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेते हो, तब तुम्हारे लिये जीवन और कर्म संसिद्ध हो जाते हैं, सदाके लिये पूर्णत्वका मुकुट धारण कर लेते हैं।

# कर्म

भगवान् मनुष्यको पथ दिखाते हैं जब कि मनुष्य स्वयं कुपथपर ही चलता है; पराप्रकृति निम्नतर मर्त्य प्राणियोंका ठोकर खाना देखती रहती है; यही है उलझन और विरोध जिससे निकलकर हमें एक सुस्पष्ट ज्ञानमें, आत्माके एकत्वमें पहुंच जाना होगा, केवल उसीमें जानेपर निर्दोष कर्म करना संभव है।

*

तुझे जीवोंपर दया करनी चाहिये — यह बात अच्छी है, पर तू यदि अपनी दयाका गुलाम हो तो यह बात अच्छी नहीं। भगवान्के सिवा तू और किसी वस्तुका गुलाम मत बन, यहांतक कि भगवान्के अत्यंत ज्योतिर्मय दूतोंका भी नहीं।

*

आनंद है भगवान्का उद्देश्य जिसे उन्होंने मनुष्यजातिके लिये निश्चित किया है; सबसे पहले तू इस परम श्रेयको अपने लिये प्राप्त कर जिसमें कि तू इसे संपूर्णतः अपने साथी प्राणियोंमें भी वितरित कर सके।

*

जो केवल अपने लिये ही अर्जन करता है वह बुरे रूपमें अर्जन करता है भले ही वह उसे स्वर्ग और पुण्यका ही नाम क्यों न दे।

*

अपनी अज्ञानावस्थामें मैंने समझा था कि क्रोध महत् और प्रतिहिंसा गौरवपूर्ण हो सकती है; परंतु अब जब कि मैं अचिली (Achilles)[1] को भीषण क्रोधमें देखता हूं तब मैं एक बहुत सुन्दर

---

[1] यह होमरके महाकाव्य 'इलियड'का मुख्य पात्र है और यूनानी सभ्यतामें मनुष्यत्वका आदर्श गिना जाता है।

बालकको एक बहुत सुन्दर क्रोधमें देखता हूं और मैं प्रसन्नता तथा आमोदसे भर जाता हूं।

*

शक्ति जब क्रोधसे ऊपर उठ जाती है तो वह महान् होती है; विनाश गौरवपूर्ण होता है, परंतु जब वह प्रतिहिंसासे आरंभ होता है तो वह अपनी जाति खो देता है। इन चीजोंका त्याग कर दो, क्योंकि ये निम्नतर मानवतासे संबंध रखती हैं।

*

कविगण मृत्यु और बाहरी क्लेशोंको बहुत अतिरंजित कर देते हैं, पर एकमात्र दुःखांत नाटक हैं अंतरात्माकी असफलताएं तथा एकमात्र महाकाव्य है मानवका देवत्वकी ओर विजयपूर्ण आरोहण।

*

हृदय और शरीरके दुःख-शोक हैं बालकोंका अपने तुच्छ कष्टों और अपने टूटे खिलौनोंके लिये रोना। अपने भीतर हंसो, पर बच्चोंको सांत्वना दो; यदि तुम्हारे लिये संभव हो तो, उनके खेलमें तुम भी भाग लो।

*

"प्रतिभाशाली व्यक्तियोंमें सर्वदा ही कोई चीज असाधारण और अव्यवस्थित होती है।" और क्यों न हो? क्योंकि स्वयं प्रतिभा भी एक असामान्य उपज है और मनुष्यके साधारण केंद्रके बाहर होती है।

*

प्रतिभा है अपने मानव-सांचेके भीतरसे काराबद्ध देवताको मुक्त करनेका प्रकृतिका प्रथम प्रयास; इस प्रक्रियामें सांचेको क्षति-ग्रस्त होना पड़ता है। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि विक्षिप्त व्यक्ति इतने कम हैं और उन्हें इतना कम महत्त्व दिया जाता है।

*

कभी-कभी प्रकृति स्वयं अपनी ही बाधाके ऊपर अत्यंत कुपित हो उठती है और तब वह अंतःप्रेरणाको मुक्त करनेके लिये मस्तिष्क-

को ही विगाड़ देती है; क्योंकि इस प्रयासमें साधारण भौतिक मस्तिष्क-की समतोलता ही उसकी प्रधान विरोधिनी होती है। ऐसे लोगोंके पागलपनकी उपेक्षा करो और उनकी अंतःप्रेरणासे लाभ उठाओ।

*

जब काली अपनी प्रचंड शक्ति तथा ज्वलंत देवत्वके साथ आधारमें अत्यंत वेगसे घुस आती हैं तव भला उन्हें कौन सहन कर सकता है? केवल वही मनुष्य जिसे कृष्णने पहलेसे ही अधिकृत कर रखा है।

*

अत्याचारीसे घृणा मत कर, क्योंकि, यदि वह प्रवल हो तो तेरी घृणा उसके विरोधकी शक्तिको वढ़ा देगी; यदि वह दुर्वल हो तव तो तेरी घृणा ही निरर्थक होगी।

*

घृणा एक शक्तिशाली तलवार है, पर इसकी धार सर्वदा ही दोहरी होती है। यह प्राचीन जादूगरोंकी क्रियाकी जैसी है जो, यदि अपने शिकारसे वंचित कर दी जाती तो वह अपने भेजनेवालेको ही निगल जानेके लिये क्रोधके साथ वापस आ जाती।

*

जव तू अपने शत्रुपर आघात करता हो तो भी उसके अंदर विद्य-मान भगवान्को प्यार कर; इस तरह दोनोंमेंसे कोई भी नरकका भागीदार नहीं होगा।

*

मनुष्य शत्रुओंकी वात करते हैं, पर कहां हैं वे? मैं तो केवल विश्वके विशाल अखाड़ेमें किसी एक या दूसरे पक्षके पहलवानोंको ही देखता हूं।

*

संत और देवदूत ही एकमात्र दिव्य सत्ताएं नहीं हैं; दैत्य और राक्षसके महत्त्वको भी समझो।

*

प्राचीन ग्रंथ दैत्योंको ज्येष्ठ देवता कहते हैं। अभी भी वे वही हैं, और कोई भी देवता तबतक सर्वांगतः दिव्य नहीं होता जबतक कि उसके अंदर एक दैत्य भी नहीं छिपा होता।

*

यदि मैं राम नहीं हो सकता तो फिर मैं रावण हो जाऊंगा; क्योंकि यह विष्णुका ही काला स्वरूप है।

*

त्याग करो, त्याग करो, निरंतर त्याग करो, पर भगवान्‌के लिये और मनुष्यजातिके लिये न कि त्याग करनेके लिये।

*

स्वार्थ अंतरात्माको मार डालता है; उसका विनाश कर दो। पर इस बातके लिये सावधान रहो कि कहीं तुम्हारा परोपकार दूसरोंके अंतरात्माओंकी हत्या न कर डाले।

*

बहुत बार, परोपकार केवल स्वार्थका ही बहुत बढ़ा-चढ़ा रूप होता है।

*

भगवान्‌के आदेश देनेपर जो हत्या नहीं करता, वह संसारमें अपरिमित विश्रृंखला और विनाशका निमित्त बनता है।

*

जबतक तुम्हारे लिये संभव हो तबतक मानव-जीवनका आदर करो; परंतु उससे भी अधिक मानवजातिके जीवनका आदर करो।

*

मनुष्य अदम्य क्रोध, घृणा या प्रतिहिंसाके वश हत्या करते हैं; वे अभी या पीछे अपनी प्रतिक्रियाओंके कारण अवश्य दुःख भोगेंगे; अथवा, वे कोई स्वार्थपूर्ण उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये, बिना किसी उत्तेजनाके हत्या करते हैं; भगवान् उन्हें क्षमा नहीं करेंगे। यदि मनुष्य हत्या करें तो सबसे पहले उनके अंतरात्माको यह जान

लेना चाहिये कि मृत्यु एक प्रकारकी मुक्ति है और यह देख लेना चाहिये कि आहत, आघात और आघातकर्त्तामें भगवान् ही विराजमान हैं।

*

साहस और प्रेम ही एकमात्र अनिवार्य गुण हैं; यदि अन्य सब गुण आच्छादित हो जायं या प्रसुप्त हो जायं तो भी ये दोनों गुण अंतरात्माको जीवंत रूपमें सुरक्षित रख सकेंगे।

*

नीचता और स्वार्थपरायणता ही एकमात्र पाप हैं जिन्हें क्षमा करना मैं कठिन अनुभव करता हूं; फिर भी केवल ये ही दोनों प्रायः सार्वभौम हो रहे हैं। अतएव दूसरोंके अंदर देखनेपर इनसे भी घृणा नहीं करनी चाहिये, बल्कि अपने अंदरसे इन्हें निर्मूल कर देना चाहिये।

*

महानता और उदारता अंतरात्माका दिव्य नभोमंडल हैं; उनके विना, मनुष्य अंधकूपमें पड़े एक कीटकी ओर ही देखता है।

*

तेरे गुण ऐसे न हों जिनकी मनुष्य प्रशंसा करते या जिनके लिये पुरस्कार देते हैं, बल्कि ऐसे हों जो तेरी पूर्णता ले आवें और जिनकी मांग तेरी प्रकृतिमें विराजमान भगवान् तुझसे करते हैं।

*

परोपकार, कर्तव्य, परिवार, देश, मानवता आदि जब अंतरात्माके यंत्र नहीं होते तब वे उसके कारागार होते हैं।

*

हमारा देश भगवती माता है; उसकी निंदा मत कर जबतक कि तू प्रेम और नम्रताके साथ वैसा न कर सके।

*

मनुष्य अपने निजी लाभके लिये अपने देशके प्रति झूठे होते हैं;

फिर भी वे बराबर यह सोचते हैं कि भीषण भयके साथ मातृहत्यासे मुंह मोड़ लेनेका उन्हें अधिकार है।

*

भूतकालके सांचोंको तोड़ डालो, परंतु उनकी स्वाभाविक शक्ति और मूल भावनाको सुरक्षित रखो अन्यथा तुम्हारा कोई भविष्य ही नहीं रह जायगा।

*

क्रांतियां भूतकालको टुकड़े-टुकड़े करके काट डालती हैं और उसे कड़ाहेमें झोंक देती हैं, पर जो कुछ उसमेंसे बाहर निकलता है वह एक नया मुखमंडल लिये हुए वही पुराना 'ईसन' (Aeson)[1] होता है।

*

संसारमें अबतक केवल आधा दर्जन ही सफल क्रांतियां हुई हैं और उनमेंसे भी अधिकांश बहुत कुछ असफलताकी जैसी ही थीं; फिर भी यह सच है कि महान् और उच्च असफलताओंके द्वारा ही मानवजाति आगे बढ़ती है।

* * *

नास्तिकता मठ-मंदिरों और गिरिजाघरोंकी बुराइयों तथा संप्रदायोंकी संकीर्णताके विरुद्ध एक आवश्यक प्रतिवाद है। भगवान् इन गंदे कागजी भवनोंको नष्ट कर डालनेके लिये उसका उपयोग एक पत्थरके रूपमें करते हैं।

*

---

[1]ईसन (Aeson) ग्रीक पौराणिक इतिहासमें वर्णित थेसलीमें आभोलकोसके राजा थे। इन्हें सौतेले भाई पेलियसने निर्वासित करके अंतमें मार डाला था।

कितनी अधिक घृणा और मूढ़ताकी सुन्दर-सी गठरी बांधकर मनुष्य उसपर "धर्म"की छाप लगा देते हैं!

*

भगवान् जब बुरीसे बुरी परीक्षा लेते हैं तब वह अच्छेसे अच्छा पथ दिखाते हैं, जब वह कठोरतापूर्वक दंड देते हैं तब वह संपूर्णतः प्रेम करते हैं, जब वह प्रचंड रूपसे विरोध करते हैं तब वह पूर्ण रूपसे सहायता करते हैं।

*

यदि भगवान्ने स्वयं अपने ऊपर मनुष्योंकी परीक्षा लेनेका भार न लिया होता तो जगत् बहुत शीघ्र सत्यानाशको प्राप्त हो गया होता।

*

अपने भीतर अपनी परीक्षा होने दो जिसमें कि तुम संघर्षके अंदर अपनी निम्नमुखी प्रवृत्तियोंका क्षय कर सको।

*

यदि तुम पवित्र बनानेका काम भगवान्के ऊपर छोड़ दो तो वह अंतरकी तुम्हारी सभी बुराइयोंको नष्ट पर देंगे; पर तुम यदि अपने-आप अपना पथ निश्चित करनेका आग्रह करो तो तुम बहुत अधिक बाहरी पाप और संतापके गढ़ेमें जा गिरोगे।

*

ऐसी प्रत्येक वस्तुको बुरी मत कहो जिसे मनुष्य बुरी कहते हैं, बल्कि महज उसी चीजका त्याग करो जिसे भगवान्ने त्याग दिया है; ऐसी प्रत्येक वस्तुको अच्छी मत कहो जिसे मनुष्य अच्छी कहते हैं, वरन् केवल उसी चीजको स्वीकार करो जिसे भगवान्ने स्वीकार किया है।

*

संसारमें मनुष्यके पास बस दो ज्योतियां हैं—कर्तव्य और सिद्धांत; परंतु जो व्यक्ति भगवान्के पास पहुंच गया है उसने इन दोनोंसे अपना नाता तोड़ लिया है और उनके स्थानमें

भगवान्‌की इच्छाको ला बिठाया है। यदि इसके लिये मनुष्य तुम्हें गाली दें तो, हे भगवान्‌के यंत्र, तुम उसकी कोई परवा मत करो वल्कि वायु या सूर्यकी भांति पालते और मारते हुए अपने रास्तेपर आगे वढ़ते जाओ।

*

भगवान्‌ने तुम्हें इसलिये अपना नहीं वनाया है कि तुम मनुष्यों-की प्रशंसाओंको एकत्र करो, वल्कि इसलिये बनाया है कि तुम निर्भय होकर उनके आदेशका पालन करो।

*

संसारको भगवान्‌के रंगमंचके रूपमें स्वीकार करो; तुम उन अभिनेताका छद्मरूप बन जाओ और अपने द्वारा उन्हें अभिनय करने दो। यदि मनुष्य तुम्हारी प्रशंसा या निंदा करें तो समझो कि वे भी महज छद्मरूप हैं; और अपने अंतरस्थ भगवान्‌को ही अपना एक-मात्र समालोचक और श्रोता समझो।

*

यदि अकेले कृष्ण एक पक्षमें हों और अपने सैन्य-सामंतों, बम-गोलों तथा तोपोंसे सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित सारा संसार दूसरे पक्ष-में हो तो भी अपने भागवत संरक्षणको ही चुनो। यदि संसार तुम्हारे शरीरपरसे चला जाय, उसके बम-गोले तुम्हारी धज्जियां उड़ा दें और उसके अश्वारोही तुम्हारे अंग-प्रत्यंगोंको कुचलकर आकारहीन कीचड़में बदल दें तथा सड़कके एक किनारे छोड़ दें तो भी कोई परवा मत करो; क्योंकि मन तो बराबर ही एक छायामूर्ति रहा है और शरीर एक लाश। आत्मा अपने आवरणोंसे मुक्त होकर अबाध विचरण करता और विजयी होता है।

*

यदि तू यह समझता हो कि पराजय ही तेरा अंत है तो फिर, यदि तू अधिक बलवान् हो तो भी, युद्ध करने मत जा। क्योंकि भाग्यको कोई मनुष्य खरीदता नहीं और न शक्ति उस व्यक्तिसे बंधी

होती है जिसके पास वह होती है। परंतु पराजय ही अंत नहीं है, वह तो महज एक दरवाजा अथवा एक आरंभ है।

*

तू कहता है कि मैं विफल हो गया हूं। बल्कि यह कह कि भगवान् अपने उद्देश्यकी ओर चक्कर काटते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

*

जगतीसे हारकर तू भगवान्को अधिकृत करनेके लिये मुड़ रहा है। यदि जगत् तुझसे अधिक सबल है तो तू क्या यह समझता है कि भगवान् तुझसे अधिक दुर्बल हैं? उनकी ओर तो बल्कि उनका आदेश जानने तथा उसे पूरा करनेकी शक्ति मांगनेके लिये मुड़।

*

जबतक किसी उद्देश्यके पक्षमें एक भी आत्मा ऐसा है जिसकी श्रद्धा अटल है तबतक वह नष्ट नहीं हो सकता।

*

तू बड़बड़ाता है कि तर्क-बुद्धि मुझे ऐसी श्रद्धाके लिये कोई आधार ही नहीं प्रदान करती। मूर्ख! यदि वह आधार प्रदान करती तो फिर श्रद्धाकी आवश्यकता ही न होती, न तुझसे उसकी मांग ही की जाती।

*

हृदयका श्रद्धा-विश्वास किसी गुप्त ज्ञानका अस्पष्ट और बहुधा विकृत प्रतिबिंब होता है।

विश्वासी व्यक्ति प्रायः अत्यंत प्रचंड नास्तिकसे भी कहीं अधिक संदेहसे पीड़ित होता है। परंतु वह इस कारण अपने विश्वासपर टिका रहता है कि उसमें कोई ऐसी अवचेतन वस्तु होती है जो जानती है। वही वस्तु उसके अंध-विश्वास तथा अर्द्धप्रकाशित संशय दोनोंको सहन करती तथा जो कुछ वह जानती है उसका साक्षात्कार करानेके लिये आगे बढ़ा ले जाती है।

*

जगत् समझता है कि वह तर्क-बुद्धिके प्रकाशके द्वारा अग्रसर होता है, पर सच पूछा जाय तो वह श्रद्धा-विश्वास तथा सहज-प्रेरणाके द्वारा परिचालित होता है।

*

तर्कबुद्धि श्रद्धा-विश्वासके अनुकूल बन जाती है अथवा युक्ति-तर्कके द्वारा सहज-प्रेरणाको उचित सिद्ध करती है; परंतु वह अवचेतन रूपसे प्रेरणा ग्रहण करती है और इसलिये मनुष्य यह समझते हैं कि वे युक्तिसंगत ढंगसे कार्य कर रहे हैं।

*

तर्कबुद्धिका एकमात्र कार्य है इंद्रियानुभवोंको व्यवस्थित करना और उनकी समालोचना करना। स्वयं उसके अंदर न तो ऐसा कोई साधन है कि वह किसी सुनिश्चित सिद्धांतपर उपनीत हो और न उसे ऐसा अधिकार प्राप्त है कि वह कार्यमें प्रवृत्त करे। जब वह कोई कार्य प्रारंभ कराने या प्रेरणा देनेका दिखावा करती है तब वह अन्य कार्यकारी शक्तियोंका छद्मवेश धारण किये होती है।

*

जबतक तुझे दिव्य ज्ञान न प्राप्त हो जाय तबतक जो कार्य ईश्वरने तर्क-बुद्धिके लिये निश्चित किया है उस कार्यके लिये तू उसका उपयोग कर तथा श्रद्धा-विश्वास और सहज-प्रेरणाका उपयोग उनके कार्योंके लिये कर। भला अपने ही अंग-प्रत्यंगोंको तू आपसमें क्यों लड़ायेगा ?

*

सर्वदा अनुभव करो और अपने बढ़ते हुए अनुभवोंके प्रकाशमें कार्य करो, पर केवल तर्क-वितर्क करनेवाले मस्तिष्कके अनुभवोंके प्रकाशमें कार्य मत करो। ईश्वर हृदयसे बातें करता है जब कि मस्तिष्क उसकी बात नहीं समझ सकता।

*

यदि तुम्हारा हृदय तुमसे यह कहे कि इस तरह और ऐसे तरीकों-

से तथा अमुक समयपर ऐसा घटित होगा तो उसपर विश्वास मत करो। पर यदि वह तुम्हें भगवान्‌के आदेशकी पवित्रता तथा विशालता प्रदान करे तब तुम उसकी बात अवश्य सुनो।

*

जब तुझे आदेश प्राप्त हो जाय तब तू बस उसे पूरा करनेकी ही फिक्र कर। बाकी चीज तो है बस भगवान्‌की इच्छा और व्यवस्था जिन्हें मनुष्य संयोग और दैवयोग और भाग्य कहते हैं।

*

यदि तेरा लक्ष्य महान् हो और तेरा साधन सामान्य हो तो भी कार्य कर; क्योंकि केवल कार्यके द्वारा ही तेरे साधनोंमें वृद्धि हो सकती है।

*

काल और सफलताकी परवा मत कर। बस, अपना पार्ट अदा कर, चाहे वह विफल होनेके लिये हो या सफल।

*

तीन रूप हैं जिनमें भागवत आदेश आ सकता है: तेरी प्रकृतिमें विद्यमान संकल्प तथा श्रद्धा-विश्वास, तेरा आदर्श जिसपर हृदय और मस्तिष्क एकमत हो चुके हों, तथा स्वयं भगवान् अथवा उनके दूतोंकी वाणी।

*

ऐसा समय भी होता है जब काम करना अनुचित या असंभव होता है। उस समय किसी स्थूल एकांतमें तपस्या करने चले जाओ या अपने अंतरात्माकी गुहामें पैठ जाओ और चाहे जो भी भागवत वाणी आये या जो भी भागवत अभिव्यक्ति हो उसकी प्रतीक्षा करो।

*

सब प्रकारकी वाणियोंपर अत्यंत शीघ्रतासे मत टूट पड़ो, क्योंकि बहुतसी झूठ बोलनेवाली अशरीरी सत्ताएं तुम्हें धोखा देनेके लिये तैयार बैठी हैं, पर अपने हृदयको शुद्ध बनाओ और उसके बाद सुनो।

*

ऐसे काल आते हैं जब भगवान् अत्यंत कठोरतापूर्वक भूतकालका समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं; उस समय, जो कुछ हो चुका है और है, वह मानों दृढ़तापूर्वक सिंहासनपर बैठ जाता है और एक अचल-अटल "मैं रहूंगा ही" का जामा पहन लेता है। उस समय, यद्यपि तुझे ऐसा भी प्रतीत होता हो कि तू सर्वभूतमहेश्वरके ही साथ युद्ध कर रहा है तो भी दृढ़तापूर्वक अपने प्रयासमें लगा रह; क्योंकि यही उनकी सबसे कठोर परीक्षा है।

*

जब कोई उद्देश्य मानवीय दृष्टिसे नष्ट हो जाता और असंभव प्रतीत होता है तब सब कुछ रुक नहीं जाता; सब कुछ केवल तभी रुकता है जब कि अंतरात्मा अपना प्रयास त्याग देता है।

*

जो व्यक्ति उच्च आध्यात्मिक स्तरोंको जीतना चाहता है उसे अंतहीन कसौटियों और परीक्षाओंमेंसे गुजरना ही होगा। परंतु अधिकांश लोग परीक्षकको केवल घूस देनेके लिये ही व्यग्र रहते हैं।

*

जबतक तेरे हाथ मुक्त हैं, तबतक अपने हाथोंसे, अपनी वाणीसे, अपने मस्तिष्कसे तथा सभी प्रकारके हथियारोंसे युद्ध कर। क्या तू अपने शत्रुकी कालकोठरीमें जंजीरोंसे जकड़ा है और उसने मुंहमें पट्टी बांधकर तुझे चुप कर दिया है? युद्ध कर अपने मौन सर्व-आक्रामक अंतरात्मा तथा अपनी सुदूर-व्यापी संकल्प-शक्तिके द्वारा और जब तू मर जाय तब भी तू युद्ध करता रह उस विश्व-व्यापिनी शक्तिके द्वारा जो तेरे अंदर विद्यमान भगवान्से निकली थी।

*

तू समझता है कि अपनी गुफामें या अपने पर्वत-श्रृंगपर बैठा हुआ संन्यासी एक पत्थर है, एक निष्कर्मा है? तू क्या जानता है? हो सकता है कि वह अपनी संकल्प-शक्तिकी महती धाराओंसे संसारको

भर रहा हो और अपनी आत्म-स्थितिके दबावके द्वारा उसे परिवर्तित कर रहा हो।

*

जिस वस्तुको मुक्त पुरुष अपने पर्वत-शिखरपर बैठकर अपने अंतरात्माके अंदर देखता है उसीको भौतिक जगत्में उद्घोषित तथा संसिद्ध करनेके लिये वीर पुरुष और पैगंबर आविर्भूत होते हैं।

*

थियासोफी-मतावलंबी अपने विवरणमें तो गलत हैं पर मूलतत्त्व-की दृष्टिसे सही हैं। यदि फ्रांसकी राज्यक्रांति घटित हुई तो इसका कारण यह था कि भारतके हिम-गिरिपर आसीन एक महान् आत्माने स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्वके रूपमें भगवान्का साक्षात्कार किया था।

*

समस्त भाषण और कार्य सनातन नीरवतामेंसे ही तैयार होकर आते हैं।

*

सागरकी गहराइयोंमें कोई उथल-पुथल नहीं होती, परंतु सतहपर होता है उसके गर्जनका आनंदपूर्ण निनाद तथा तटकी ओर उसका धावा; ऐसी ही स्थिति होती है प्रचंड कर्मके बीच रहनेवाले मुक्तात्माकी। आत्मा कार्य नहीं करता; वह केवल अपने अंदरसे अत्यंत प्रबल कर्मका निःश्वास फेंकता रहता है।

*

ऐ भगवान्के सैनिक और वीर योद्धा! कहां है भला तेरे लिये शोक या लज्जा या दुःख-कष्ट! क्योंकि, तेरा जीवन तो है एक गौरव-की वस्तु, तेरा कार्य है एक आत्मदान, तेरी विजय है देवत्वप्राप्ति, तेरी हार है तेरा विजयोल्लास।

*

क्या तेरे निम्नतर अंग अब भी शोक और पापके आघातसे

पीड़ित होते हैं? परंतु ऊपर, चाहे उन्हें दिखायी देता हो या नहीं, तेरा अंतरात्मा राजाकी तरह शांत, स्वतंत्र और सर्वजयी बनकर बैठा है। विश्वास रख कि विश्वजननी अंततक अपना कार्य अवश्य पूरा करेंगी और तेरी सत्ताकी मिट्टीतकको एक प्रकारके हर्ष तथा पवित्रतामें परिणत कर देंगी।

*

यदि तेरे अंदर हृदय बेचैन हो, यदि दीर्घ कालतक तूने कोई उन्नति न की हो, यदि तेरी शक्ति हिम्मत हार जाय और खिन्न हो जाय तो सर्वदा हमारे परम प्रेमी और प्रभुका शाश्वत वचन याद कर, "अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः — मैं तुझे सब पापों और बुराइयोंसे मुक्त कर दूंगा, शोक मत कर।"

*

पवित्रता तेरे अंतरात्मामें है; परंतु जहांतक कर्मोंका प्रश्न है, कहां है उनमें पवित्रता या अपवित्रता?

*

ऐ मृत्यु-देवता! हमारा छद्मवेशधारी मित्र और सुविधाओंका स्रष्टा! जब तू फाटक खोलना चाहे तब हमें पहलेसे बता देनेमें मत हिचकिचा; क्योंकि हम उन लोगोंमेंसे नहीं हैं जो उसकी कठोर झनझनाहट सुनकर कांप जाते हैं।

*

मृत्युदेवता कभी-कभी एक उद्दंड भृत्यकी तरह काम करते हैं; परंतु जब वह मिट्टीका यह जामा बदलकर उस अधिक चमकदार पोशाकको पहना देते हैं तब उनकी तूफानी दिल्लगी और धृष्टताको क्षमा किया जा सकता है।

*

कौन तुझे मार सकता है ऐ अमर आत्मा! कौन तुझे यातना दे सकता है ऐ चिरप्रसन्न भगवान्!

*

जब तेरे अंग-प्रत्यंग अवसाद और दुर्बलताके साथ प्रणय करनेके इच्छुक हों तब यह मनमें सोच, "मैं हूं बक्कस (Bacchus), ऐरिस (Ares) और ऐपोलो (Apollo)[1]; मैं हूं पवित्र और अजेय अग्नि; मैं हूं चिर-ज्वलंत प्रखर सूर्य।"

*

अपने अंदरके डायोनीसियन चीत्कार[2] और महानंदसे डरकर पीछे न हट, परंतु यह देख कि कहीं तू उन तरंगोंपर वहनेवाला एक तिनका न वन जांय।

*

तुझे अपने अंदर सभी देवताओंको वहन करना सीखना होगा, और उनके एकाएक भीतर घुस आनेपर कभी डगमगाना अथवा उनके बोझके नीचे दबकर चूर-चूर नहीं होना होगा।

*

मनुष्यजाति पराक्रम और हर्षसे थक गयी है और उसने दुःख और दुर्बलताको उत्तम गुण माना है, ज्ञानसे थक गयी है और अज्ञानको पवित्रताका नाम दिया है, प्रेमसे थक गयी है और हृदयहीनताको प्रवुद्धता तथा ज्ञानका नाम दिया है।

*

सहनशीलता कई तरहकी होती है। मैंने एक कापुरुषको देखा जो मारनेवालेके सामने अपना गाल पसारे खड़ा था। मैंने एक शरीरसे दुर्वल व्यक्तिको देखा जिसे एक शक्तिशाली और दांभिक गुंडेने मारा पर जो आक्रमणकारीकी ओर चुपचाप और एकटक निहार रहा था; मैंने शरीरधारी भगवान्‌को उन लोगोंकी ओर प्रेमसे हंसते

---

[1] यूनानके पुराणानुसार बक्कस सुराके देवता, एरिस युद्धके देवता और ऐपोलो सूर्य-देवता हैं।

[2] सुरा-देवताकी चिल्लाहट।

देखा जो उन्हें पत्थर मार रहे थे। इनमें पहला तो था हास्यास्पद, दूसरा था भयंकर और तीसरा था दिव्य और पवित्र।

*

स्वयं अपने अनिष्टकर्त्ताको क्षमा करना तो महान् कार्य है, परंतु उतना ही महान् कार्य दूसरोंकी क्षति करनेवालेको क्षमा करना नहीं है। पर फिर भी इन्हें भी क्षमा कर, किंतु जब आवश्यक हो तो शांतिपूर्वक बदला भी ले।

*

जब एशियावाले हत्या करते हैं तब वह नृशंसताका कार्य माना जाता है; जब यूरोपवाले करते हैं तब वह एक विशेष सामरिक प्रयोजन माना जाता है। इस विभेदको समझ ले और इस जगत्के गुणोंपर गहराईसे विचार कर।

*

अत्यंत क्रोधी धर्मात्माओंको ध्यानपूर्वक देख। बहुत शीघ्र ही तू देखेगा कि जिस अपराधके लिये उन्होंने इतने भयंकर रूपमें दोषा-रोपण किया है ठीक उसे ही या तो वे खुद कर रहे हैं या क्षमा कर रहे हैं।

*

"मनुष्योंके अंदर बहुत थोड़ी मात्रामें ही सच्चा पाखंड है।" सच है, परंतु उनमें बहुत अधिक कूट-नीति है और उससे भी कहीं अधिक है आत्मप्रवंचना। उनकी यह आत्मप्रवंचना तीन प्रकारकी होती है, सचेतन, अवचेतन और अर्द्धचेतन; परंतु इनमें तीसरी अत्यंत भयावह है।

*

मनुष्योंके पुण्यके दिखावेसे धोखा मत खाओ, न उनके प्रकट या गुप्त पापोंसे घृणा ही करो। मनुष्यजातिके एक दीर्घ संक्रमण-कालमें होनेवाले ये सब आवश्यक उलट-फेर हैं।

*

संसारकी कुटिलताओंको देखकर विरक्त मत होओ; संसार एक घायल और विषैला सर्प है जो एक दैव-निर्दिष्ट कंचुक-परिवर्तन और परिपूर्णताकी ओर रेंगता हुआ जा रहा है। प्रतीक्षा करो, क्योंकि यह भगवान्‌की एक बाजी है, और इसी नीचतामेंसे भगवान् जाज्वल्य-मान और सर्वविजयी बनकर प्रकट होंगे।

*

भला एक छद्मवेशको देखकर तू पीछे क्यों हटता है? इसके घृणित, कुत्सित या भयंकर ऊपरी रूपके पीछे श्रीकृष्ण तेरे मूर्खतापूर्ण क्रोधपर, तेरी और भी अधिक मूर्खतापूर्ण अवज्ञा या घृणापर तथा तेरे सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण भीषण त्रासपर हंस रहे हैं।

*

जब तू देखे कि तू दूसरेको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखता है तब तू स्वयं अपने हृदयमें निहार और अपनी मूढ़तापर हंस।

*

व्यर्थके वाद-विवादसे अलग रह; परंतु खुले तौरपर अपने विचारोंका आदान-प्रदान कर। यदि तुझे तर्क-वितर्क करना ही पड़े तो अपने विपक्षीसे कुछ सीख; क्योंकि, यदि तू कानोंसे और तार्किक बुद्धिसे न सुने बल्कि अंतरात्माके प्रकाशकी सहायतासे सुने तो तू एक मूर्खसे भी बहुत अधिक ज्ञान आहरण कर सकता है।

*

सभी वस्तुओंको मधुमें रूपांतरित कर दे; यही है दिव्य जीवन प्राप्त करनेकी विधि।

*

व्यक्तिगत विवाद सर्वदा ही टाला जाना चाहिये; परंतु सार्व-जनिक युद्धसे कभी पीछे मत हट; परंतु वहां भी अपने विपक्षीकी शक्ति-सामर्थ्यकी प्रशंसा कर।

*

जब तू कोई ऐसी राय सुने जो तुझे नापसंद हो तो उसका

अध्ययन कर और उसके अंदर विद्यमान सत्यको ढूंढ़ निकाल।

*

मध्ययुगके संन्यासीगण औरतोंसे घृणा करते थे और ऐसा मानते थे कि भगवान्‌ने साधुओंकी परीक्षा लेनेके लिये ही उनकी सृष्टि की थी। मनुष्यको भगवान् और नारी जातिके विषयमें कहीं अधिक उच्चताके साथ विचार करना चाहिये।

*

यदि किसी नारीने तुझे लुभाया है तो भला इसमें उसका दोष है या तेरा? मूर्ख और आत्म-प्रवंचक न बन।

*

स्त्रीके जालसे वचनेके दो उपाय हैं: एक है सभी स्त्रियोंका त्याग करना और दूसरा है सभी जीवोंको प्यार करना।

*

निःसंदेह संन्यास बड़ा ही आरोग्यदायी होता है, गुफा बड़ी ही शांतिपूर्ण होती है और शैल-शिखर अद्भुत रूपसे आनंददायी होते हैं; जो हो, तू संसारमें उसी तरह कार्य कर जैसा कि भगवान् तुझसे आशा करते हैं।

*

भगवान् तीन वार शंकराचार्यपर हंसे; सबसे पहले, जव वह अपनी मांका शव जलानेके लिये घर वापिस आये; फिर, जव उन्होंने ईशोपनिषद्पर भाष्य लिखा, और तीसरी बार, जब उन्होंने नैष्कर्म्यका प्रचार करते हुए सारे भारतको तूफानकी तरह छान डाला।

*

मनुष्य महज सफलता प्राप्त करनेके लिये परिश्रम करते हैं और यदि उन्हें विफलमनोरथ होनेका पर्याप्त सौभाग्य प्राप्त होता है तो इसका कारण यह होता है कि प्रकृति-देवीकी बुद्धिमानी और शक्ति उनकी बौद्धिक चातुरीको पराभूत कर देती है। एकमात्र भगवान्

ही जानते हैं कि कब और कैसे विज्ञतापूर्वक भूल की जाती और फलदायी ढंगसे विफल हुआ जाता है।

*

जो मनुष्य कभी विफल नहीं हुआ है और न कभी दुःख-कष्टमें ही पड़ा है उसपर विश्वास मत कर; उसके सौभाग्योंका अनुसरण मत कर, उसके झंडेके नीचे युद्ध मत कर।

*

संसारमें दो ऐसे हैं जो महत्ता और स्वतंत्रताके लिये अनुपयुक्त हैं: एक तो वह मनुष्य जो कभी दूसरेका गुलाम नहीं रहा है और दूसरा वह राष्ट्र जिसने कभी विदेशियोंका जुआ नहीं वहन किया है।

*

पहलेसे यह निर्धारित मत करो कि तुम्हारा आदर्श किस समय और किस तरीकेसे पूरा होगा। कार्य करो और समय तथा तरीके-को सर्वज्ञ भगवान्पर छोड़ दो।

*

कार्य कर मानो आदर्शको शीघ्रताके साथ और तेरे ही जीवन-कालमें चरितार्थ होना हो; लगनके साथ प्रयास करता रह मानो तू जानता हो कि वह तबतक होनेवाला नहीं जबतक कि और भी सहस्र वर्षोंके परिश्रमका मूल्य न चुकाया जाय। जिस चीजको पांच लाख वर्षोंतक पानेकी आशा करनेका साहस तुझे नहीं होता, वही चीज कल उषःकालके साथ प्रस्फुटित हो सकती है और जिस चीज-को पानेके लिये तू अभी ही आशा लगाये बैठा है और लालायित हो रहा है उसीको संभवतः सौवें जन्ममें प्राप्त करना तेरे लिये निश्चित हो चुका है।

*

हममेंसे प्रत्येक आदमीको पृथ्वीपर अभी लाख-लाख जीवन पूरे करने हैं। तब भला इतनी जल्दबाजी और हो-हल्ला और अधीरता क्यों?

*

तेजीसे पग आगे बढ़ा, क्योंकि लक्ष्य बहुत दूर है; असमय विश्राम न कर, क्योंकि तेरा मालिक तेरी यात्राके अंतिम छोरपर तेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

*

मैं बच्चों जैसी उस अधीरतासे थक गया हूं जो रोती-चिल्लाती और भगवान्‌को गालियां देती है तथा आदर्शको इसलिये अस्वीकार करती है कि हम स्वर्ण-शिखरोंतक अपने नन्हेंसे एक दिनमें या कुछ थोड़ी-सी क्षणिक शताब्दियोंमें नहीं पहुंच पाते।

*

कामनारहित होकर अपने अंतरात्माको लक्ष्यके ऊपर एकाग्र कर दे और अपने अंदर विद्यमान भागवत शक्तिके द्वारा उसपर दबाव डाल; तब स्वयं लक्ष्य ही साधनकी सृष्टि करेगा, नहीं, वही अपना निजी साधन बन जायगा। क्योंकि लक्ष्य है ब्रह्म और वह पहलेसे ही चरितार्थ हो चुका है; उसे सर्वदा ब्रह्मके रूपमें देख, उसे सदा अपने अंतरात्मामें पहलेसे ही संसिद्ध देख।

*

बुद्धिके द्वारा योजना मत बना, बल्कि अपनी दिव्य दृष्टिको अपने लिये योजनाएं बनाने दे। जब कोई उपाय तेरे सामने करणीय विषयके रूपमें उपस्थित हो तो बस उसे ही अपना लक्ष्य बना ले; लक्ष्यका जहांतक प्रश्न है, वह संसारमें अपने-आपको पूरा कर रहा है और तेरी अंतरात्मामें वह पहलेसे ही पूरा हो चुका है।

*

मनुष्य देखते हैं कि घटनाएं अपूर्ण हैं, उनके लिये प्रयास करने तथा उन्हें संसिद्ध करनेकी आवश्यकता है। यह गलत देखना है। घटनाएं संसिद्ध नहीं की जातीं, वे विकसित होती हैं। घटना है ब्रह्म और वह पुरातन कालसे पहले ही पूरा हो चुका है, अब वह अभिव्यक्त हो रहा है।

* * *

जिस तरह किसी तारेका प्रकाश उस तारेके मिट जानेके सैकड़ों वर्ष बाद पृथ्वीपर पहुंचता है, उसी तरह जो घटना आदिकालमें ब्रह्मके अंदर पहले ही पूर्ण हो चुकी थी वह अब हमारे भौतिक अनुभवमें अभिव्यक्त होती है।

*

सरकार, समाज, राजा, पुलिस, न्यायाधीश, संस्था, धर्म-मंदिर, नियम-कानून, रीति-रिवाज, सैन्य-सामंत आदि सभी चीजें सामयिक आवश्यकता हैं जो हमारे ऊपर कुछ शताब्दियोंके लिये लादी गयी हैं, क्योंकि भगवान्‌ने हमसे अपना मुंह छिपा लिया है। जब वह फिर अपने सत्य-स्वरूप तथा सौंदर्यके साथ हमारे सामने प्रकट होंगे तब उस प्रकाशमें ये सब चीजें विलीन हो जायेंगी।

*

जैसे आरंभमें, वैसे ही अंतमें भी अराजक स्थिति ही मनुष्यकी सच्ची दिव्य स्थिति है; पर मध्यवर्ती कालमें वह हमें सीधे शैतान और उसके राज्यकी ओर ले जाती है!

*

समाजसंबंधी साम्यवादी सिद्धांत मूलतः व्यक्तिवादसे उतना ही श्रेष्ठ है जितना कि भ्रातृत्व-भाव ईर्ष्या तथा पारस्परिक मारकाटसे श्रेष्ठ है; परंतु यूरोपमें आविष्कृत समाजवादकी जितनी भी व्यावहारिक योजनाएं हैं वे सभी एक प्रकारका जुआ, अत्याचार और कारागार हैं।

*

यदि साम्यवाद (Communism) सफलतापूर्वक कभी पृथ्वीपर पुनः स्थापित हो तो उसे अंतरात्माके भ्रातृभाव तथा अहंकारकी मृत्युकी नींवपर ही स्थापित होना होगा। बलपूर्वक स्थापित संघ और यांत्रिक साहचर्यका अंत तो एक विश्वव्यापी विफलतामें ही होगा।

*

जीवनमें उपलब्ध वेदांत ही साम्यवादी समाजके लिये एकमात्र

व्यवहार्य आधार है। यही वह 'साधूनां साम्राज्यम्' (संतोंका साम्राज्य) है जिसका स्वप्न ईसाई, मुस्लिम तथा पौराणिक हिंदू-धर्मने देखा था।

*

फ्रांसके क्रांतिकारियोंने "स्वाधीनता, समानता, और भ्रातृत्व"का मंत्रोच्चार किया, परंतु यथार्थमें एक घूंट समानताके साथ केवल स्वाधीनताको ही लानेका प्रयास किया गया है। भ्रातृत्वका जहां-तक संबंध है, केवल "कैन' (Cain)[1] का भ्रातृत्व ही स्थापित किया गया — और फिर 'बाराब्बास' (Barabbas)[2] का। कभी-कभी इसे 'ट्रस्ट' (Trust) या 'व्यापारिक संघ' (Combine) नाम दिया जाता है और कभी-कभी 'यूरोपका एकत्व' (Concert of Europe) कहा जाता है।

*

यूरोपका उन्नत विचार घोषित करता है, "चूंकि स्वतंत्रता असफल हो गयी है, इसलिये आओ, हम समानतासहित स्वतंत्रताके लिये प्रयास करें, अथवा, चूंकि इन दोनोंको एक साथ जोड़ना थोड़ा कठिन है इसलिये स्वतंत्रताके बदले समानताका ही प्रयत्न करें। भ्रातृत्वका जहांतक प्रश्न है, वह तो असंभव है; अतएव हम उसके स्थानपर रखेंगे "औद्योगिक संघ।" परंतु इस बार भी, मैं समझता हूं कि, भगवान् प्रतारित नहीं होंगे।

*

भारतमें सामाजिक जीवनके तीन गढ़ थे, ग्राम्य समाज, विशालतर सम्मिलित परिवार और संन्यासी-संप्रदाय। ये सब अब सामाजिक जीवनसंबंधी अहंजन्य परिकल्पनाओंके पदचापसे भंग हो गये

---

[1]कैन आदम और हौआका पहला लड़का था जिसने अपने भाई एबेल (Abel)को मार डाला था।

[2]बाराब्बास एक डांकू था जिसका जिक्र बाइबिलमें आया है।

हैं या हो रहे हैं; परंतु क्या, आखिरकार, यह केवल एक विशालतर और दिव्यतर समाजवादकी ओर जानेके लिये ही इन अपूर्ण सांचोंका टूटना नहीं है?

*

व्यक्ति तबतक पूर्ण नहीं हो सकता जबतक वह अभी जिसे 'मैं' कहता है उसे संपूर्णतः भागवत सत्ताको समर्पित न कर दे। ठीक उसी तरह, मानवजाति जो कुछ है वह सब वह जबतक भगवान्को नहीं दे देती तबतक पूर्णताप्राप्त समाजकी सृष्टि कभी नहीं हो सकती।

*

भगवान्की नजरोंमें कोई चीज तुच्छ नहीं है; तेरी नजरोंमें भी कोई चीज तुच्छ न रहे। भगवान् दिव्य शक्तिका उतना ही श्रम एक सीपीकी रचनामें भी प्रयुक्त करते हैं जितना कि एक साम्राज्यकी गठनमें। तेरे लिये एक विलासी और अयोग्य राजा होनेकी अपेक्षा एक निपुण मोची होना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

*

जो कार्य तेरे लिये अभिप्रेत है उसमें अपूर्ण क्षमता तथा उसका अधूरा फल किसी कृत्रिम दक्षता एवं उधार ली हुई पूर्णतासे कहीं अधिक अच्छा है।

*

फल कर्मका उद्देश्य नहीं है, बल्कि उद्देश्य है होने, देखने और करनेमें भगवान्का शाश्वत आनंद।

*

भगवान्का जगत् बृहत्तर इकाईके ऊपर गंभीरतापूर्वक प्रयास करनेसे पहले अपेक्षाकृत छोटी इकाईको परिपूर्ण बनाते हुए एक-एक पग आगे बढ़ता है। यदि तू कभी संपूर्ण संसारको एक राष्ट्रका रूप देना चाहे तो तू सबसे पहले स्वतंत्र राष्ट्रीयताको स्थापित कर।

*

एक ही रक्त, एक ही भाषा या एक ही धर्मसे कोई राष्ट्र नहीं

बनता; ये सब केवल महत्त्वपूर्ण सहायक और शक्तिशाली सुविधाएं हैं। परंतु जहां-कहीं पारिवारिक बंधनोंसे रहित मनुष्योंके समाज एक ही भाव और अभीप्सा रखकर अपने पूर्वजोंसे प्राप्त एक ही उत्तराधिकारकी रक्षा करनेके लिये या अपनी संततिके लिये एक ही जैसे भविष्यको प्रतिष्ठित करनेके लिये ऐक्यबद्ध होते हैं वहां, यह समझना चाहिये कि, एक राष्ट्रका अस्तित्व पहलेसे ही विद्यमान है।

*

राष्ट्रीयता परिवारकी अवस्थासे परे जानेवाले प्रगतिशील भगवान्‌का एक पदक्षेप है; अतएव एक राष्ट्रके उत्पन्न होनेसे पहले कुल और जातिकी आसक्तिको दुर्बल और नष्ट होना ही होगा।

*

परिवार, राष्ट्र और मानवता पृथग्भूत एकत्वसे सामूहिक एकत्वकी ओर जानेके लिये विष्णुके तीन पग हैं। इनमेंसे पहला चरितार्थ हो गया है, दूसरेकी पूर्णताके लिये अभी हम प्रयास कर रहे हैं, तीसरेकी ओर हम अपने हाथ फैला रहे हैं और पथ परिष्कृत करनेका प्रयास किया जा चुका है।

*

मनुष्यजातिकी जो वर्तमान नैतिकता है उसकी सहायतासे एक सुदृढ़ तथा स्थायी एकत्वका निर्माण करना अभी संभव नहीं; परंतु ऐसा कोई कारण नहीं कि हम अपनी उत्कट अभीप्सा और अथक प्रयासके पुरस्कारस्वरूप अस्थायी रूपसे उसके समीप भी न पहुंच सकें। निरंतर निकटवर्त्ती होते हुए, आंशिक उपलब्धियां प्राप्त करते हुए तथा क्षणिक सफलताएं प्राप्त करते हुए ही प्रकृति माता आगे बढ़ती है।

*

अनुकरण कभी-कभी एक अच्छे शिक्षण-पोतका काम देता है; परंतु उसपर नौ-सेनाध्यक्षका झंडा कभी नहीं फहरायेगा।

*

सफल अनुकरणकारियोंके झुंडमें शामिल होनेकी अपेक्षा आत्म-हत्या कर लेना कहीं अधिक अच्छा है।

*

संसारमें कर्मका पथ बड़ा जटिल है—गहना कर्मणो गतिः। जब अवतार रामने वालिकी हत्या की, अथवा, कृष्णने, जो स्वयं भगवान् ही थे, अपनी जातिको मुक्त करनेके लिये अपने अत्याचारी मामा कंसका वध कर डाला तब भला कौन कह सकता है कि उन्होंने अच्छा किया या बुरा? परंतु हम यह महसूस करते हैं कि उन्होंने दिव्य रूपमें ही कार्य किया।

*

प्रतिक्रिया प्रगति करनेकी शक्तिको बढ़ाकर और शुद्ध करके प्रगतिको तेजीसे आगे बढ़ाती और पूर्णतातक ले जाती है। यही चीज है जिसे असंख्य दुर्वल लोग देख नहीं पाते और उस समय अपने बंदरगाहके विषयमें निराश हो जाते हैं जब कि उनका जहाज आंधीकी तेज हवाके साथ असहाय भागा जाता है, पर वह, वृष्टि और समुद्रकी लीकसे छिपा हुआ, भागा जाता है भगवान्के अभी-प्सित बंदरगाहकी ही ओर।

*

प्रजातंत्र था निरंकुश शासक, पुरोहित और सामंतके सम्मिलित स्वैराचारके विरुद्ध मानव-अंतरात्माका प्रतिवाद; समाजवाद है धनिक-वर्गीय प्रजातंत्रके स्वैराचारके विरुद्ध मानव-आत्माका प्रतिवाद; और संभव है कि अराजकतावाद नौकरशाही समाजवादके अत्याचारके विरुद्ध मानव-आत्माका प्रतिवाद बनकर आये। एक भूल-भ्रांतिसे दूसरी भूल-भ्रांतिकी ओर तथा एक असफलतासे दूसरी असफलताकी ओर कोलाहल और उत्सुकताके साथ आगे बढ़ते जाना ही यूरोपीय प्रगतिका स्वरूप है।

*

यूरोपके प्रजातंत्रका अर्थ है मंत्रिमंडल, घूसखोर प्रतिनिधि अथवा

स्वार्थपरायण पूंजीपतिका ऐसा शासन जो चंचलमति जनताके सामयिक आधिपत्यकी नकाब पहने हुए हो। यूरोपके समाजवादका अर्थ संभवतः होगा राज्यकर्मचारी और पुलिसके सिपाहीका ऐसा शासन जो कि एक कल्पित राज्यके सैद्धांतिक आधिपत्यका चेहरा लगाये हुए हो। यह पूछना व्यर्थ है कि इन दोनोंमें कौन अधिक अच्छी शासनप्रणाली है; और यह निश्चय करना कठिन होगा कि इनमेंसे कौन अधिक बुरा है।

*

प्रजातंत्रका लाभ यह है कि एक अत्याचारी राजा या कुछ थोड़ेसे स्वार्थी लोगोंकी सनकसे व्यक्तिका जीवन, स्वाधीनता और धन-संपदा सुरक्षित रहती हैं; इसकी बुराई यह है कि मनुष्यजाति-के अंतरसे महानताका ह्रास हो जाता है।

*

यह भ्रांत मानवजाति सर्वदा यह स्वप्न देखा करती है कि यह सरकार तथा समाजरूपी यंत्रके द्वारा मनुष्योंकी पारिपार्श्विक अवस्था-को पूर्ण बनायेगी; परंतु एकमात्र अंतरस्थ अंतरात्माको पूर्ण बनानेपर ही बाहरी परिपार्श्व भी पूर्ण बनाया जा सकता है। जो कुछ तू अपने भीतर है बस उसीका तू अपने बाहर उपभोग कर सकता है; कोई बाह्य साधन तेरी सत्ताके विधानसे तेरी रक्षा नहीं कर सकता।

*

सत्यके प्रति-रूप या चिह्नकी पूजा करते समय तू सत्यकी हत्या करने या उपेक्षा करनेकी अपनी मानवीय प्रवृत्तिसे सदा सावधान रह। मानवीय दुष्टता नहीं वरन् मानवीय प्रमादशीलता ही शैतानके लिये एक सुवर्ण-सुयोग बन जाती है।

*

संन्यासीके वसनकी इज्जत करो, पर उसे पहननेवालेको भी ध्यानसे देखो, अन्यथा पवित्र स्थानोंको पाखंड अधिकृत कर लेगा और आंतरिक साधुता एक पौराणिक गाथा ही बन जायगी।

*

इतने अधिक लोग सुदक्षता या समृद्धि पानेका प्रयास करते हैं पर बहुत थोड़ेसे लोग ही जीवन-संगिनीके रूपमें दरिद्रताका आलिंगन करते हैं। पर, जहांतक तेरा संबंध है, तू केवल भगवान्‌को पाने और उन्हींका आलिंगन करनेका प्रयत्न कर। बस, उन्हें ही अपने लिये राजाका महल या भिखारीका खप्पर चुनने दे।

*

भला गुलाम बनानेवाली एक आदतके सिवा पाप और क्या चीज है तथा एक मानवीय मतके सिवा पुण्य और क्या चीज है? भगवान्‌को देखो और उनकी इच्छाको कार्यान्वित करो, चाहे जो भी पथ वह तुम्हारे चलनेके लिये निश्चित कर दें बस उसीपर चलो।

*

विश्वके संघर्षमें धनियोंका पक्ष उनके धनके कारण मत अपनाओ और न गरीबोंका पक्ष उनकी गरीबीके कारण, राजाका पक्ष उसकी शक्ति और राज्य-मर्यादाके कारण मत लो और न प्रजाका पक्ष उसकी आशा और उत्साहके कारण, बल्कि सदा-सर्वदा भगवान्‌के पक्षमें रहो; अवश्य ही जबतक कि उन्होंने स्वयं अपने विरुद्ध युद्ध करनेका तुम्हें आदेश ही न दे दिया हो! उस समय तुम अपने समस्त हृदय और शक्ति और उल्लासके साथ वैसा ही करो।

*

भला मैं यह कैसे जान सकता हूं कि मेरे लिये भगवान्‌की इच्छा क्या है? इसके लिये मुझे अपने अंदरकी प्रत्येक तह और गर्त्तमेंसे खोज-खोजकर अहंकारको निकाल फेंकना होगा और अपने विशुद्ध और नग्न अंतरात्माको उनकी असंख्य क्रियाओंसे ओतप्रोत कर देना होगा; तब वह स्वयं ही उसे मेरे सम्मुख प्रकट कर देंगे।

*

जो जीव नग्न और लज्जाविहीन होता है केवल वही पवित्र और निर्दोष हो सकता है, ठीक जैसे कि मानवताके आदिम बगीचेमें आदम था।

*

अपने धन-वैभवपर अभिमान मत कर और न अपनी दरिद्रता और आत्मत्यागके लिये मनुष्योंसे प्रशंसा पानेकी चेष्टा कर; ये दोनों ही चीजें अहंकारका घटिया या बढ़िया भोजन हैं।

*

परोपकार-वृत्ति मनुष्यके लिये अच्छी है, पर जब वह चरम आत्मतुष्टिका रूप ले लेती है और दूसरोंकी स्वार्थपरताको अनुचित प्रश्रय देते हुए जीती है तब वह उतनी अच्छी नहीं रह जाती।

*

परोपकारके द्वारा तू अपने अंतरात्माकी रक्षा कर सकता है, पर देख, कहीं तू उसकी रक्षा अपने भाईका सर्वनाश करके न कर।

*

आत्मत्याग शुद्धीकरणका एक शक्तिशली साधन है; यह अपने-आपमें न तो कोई उद्देश्य है और न जीवनयापनका कोई अंतिम विधान। तेरा लक्ष्य अपने-आपको पीड़ित करना नहीं बल्कि संसारमें भगवान्‌को संतुष्ट करना होना चाहिये।

*

पापाचरण तथा दुर्गुणद्वारा की गयी बुराईको पहचानना आसान है, पर शिक्षित आंखें धर्माभिमानी और अहंकेंद्रित साधुताद्वारा की गयी बुराईको भी देख लेती हैं।

*

सबसे पहले ब्राह्मणोंने शास्त्रों और कर्मकाण्डके द्वारा शासन किया, उसके बाद क्षत्रियोंने ढाल और तलवारके बलपर राज्य किया; अब वैश्य मशीनों और मुद्राके बलपर शासन करते हैं तथा शूद्र, स्वतंत्र श्रमिक, श्रमिक-समवायके राज्यका अपना सिद्धांत लेकर बल-पूर्वक आगे आ रहे हैं। पर न तो पुरोहित, न राजा, न व्यवसायी और न मजदूर ही मनुष्यजातिका सच्चा शासक है; हंसिया और फावड़ेका स्वेच्छाचार भी अपने पहलेके सभी स्वेच्छाचारोंकी तरह ही अवश्य विफल होगा। जब मनुष्यका अहंभाव मर जायगा और

मनुष्यके अंदर विराजमान भगवान् अपने निजी मानवीय विश्वभावपर शासन करेंगे केवल तभी यह पृथ्वी सुखी और संतुष्ट मानवजातिको धारण करेगी।

*

मनुष्य सुखके पीछे दौड़ते हैं और उस जलती हुई दुलहिनको बड़ी व्याकुलताके साथ अपने संतप्त कलेजेसे चिपका लेते हैं; इस बीच एक दिव्य और निर्दोष आनंद उनके पीछे खड़ा रहकर इस बातकी प्रतीक्षा करता है कि वे उसे देखें, उसकी मांग करें और उसे अधिकृत करें।

*

मनुष्य तुच्छ सफलताओं तथा नगण्य प्रभुताओंका पीछा करते हैं और उसके कारण वे थकावट और दुर्बलताके गर्त्तमें जा गिरते हैं; इस बीच विश्वमें विद्यमान भगवान्‌की संपूर्ण निःसीम शक्ति उनके हाथोंमें अपने-आपको सौंप देनेके लिये व्यर्थ प्रतीक्षा करती रहती है।

*

मनुष्य ज्ञानके छोटे-छोटे ब्योरोंकी खोज करते हैं और उन्हें सीमित तथा अस्थायी चिंतन-पद्धतियोंमें पिरो देते हैं; परंतु इस बीच समस्त असीम प्रज्ञा उनके सिरके ऊपर हंसती और अपने रंग-बिरंगे पंखोंकी छटाको फहराती रहती है।

*

मनुष्य एक नीच और अधम अहंकारके इर्दगिर्द जिन सब मानसिक धारणाओंको एकत्र करते हैं उन्हींसे गठित अपनी ससीम तुच्छ सत्ताको संतुष्ट करने तथा परिपूर्ण करनेके लिये वे बड़े परिश्रमके साथ प्रयास करते हैं; परंतु इस बीच देशकालरहित आत्मा अपनी आनंदपूर्ण और समुज्ज्वल अभिव्यक्तिसे वंचित ही रह जाता है।

*

ऐ भारतकी आत्मा! अब तू कलियुगी अंधकाराच्छन्न पंडितोंके साथ रसोई और पूजाके घरमें छिपी न रह; निष्प्राण क्रियाकांड,

विधि-विधान तथा दक्षिणाके अपवित्र धनसे अपने-आपको आच्छादित न कर, बल्कि अपने सच्चे ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्वको अपनी आंतर सत्तामें खोज, भगवान्से मांग तथा शाश्वत वेदकी सहायतासे पुनः प्राप्त कर; वैदिक यज्ञके गुप्त सत्यको पुनः स्थापित कर, प्राचीनतर तथा बलवत्तर वेदांतको चरितार्थ करनेके लिये पुनः प्रयास करना आरंभ कर।

*

यज्ञको पार्थिव वस्तुओंके दान या कुछ कामनाओं और लालसाओंके त्यागतक ही सीमित मत कर, बल्कि अपने प्रत्येक विचार और प्रत्येक कर्म और प्रत्येक भोगको अपने अंतर्यामी भगवान्के प्रति पूजाकी वस्तु बना दे। तेरे पग तेरे प्रभुवरके पगका अनुसरण करें, तेरी निद्रा और जागृति श्रीकृष्णके प्रति यज्ञ बन जायें।

*

यह मेरे शास्त्र या मेरे विज्ञानके अनुसार नहीं है,— ऐसा नियम पालन करनेवाले, आचारनिष्ठ लोग कहते हैं। नादान! क्या भगवान् केवल एक पुस्तक हैं कि जो कुछ उसमें लिखा है उसके अतिरिक्त और कुछ सत्य और अच्छा हो ही नहीं सकता?

*

भला किस मानदंडके अनुसार मुझे चलना चाहिये, उस वाणीके अनुसार जिसे भगवान् मुझसे बोलते हैं और जो यह कहती है कि "बस, यही मेरी इच्छा है हे मेरे सेवक", अथवा उन नियमोंके अनुसार जिन्हें मरे हुए लोगोंने लिखा है? नहीं, यदि मुझे किसीसे डरना ही हो और किसीको मानना ही हो तो मैं बल्कि भगवान्से ही डरूंगा और उन्हींकी आज्ञाका पालन करूंगा, किसी ग्रंथके पृष्ठों या किसी पंडितकी त्योरियोंसे न तो डरूंगा और न उनका अनुसरण ही करूंगा।

*

क्या तू यह कहेगा कि मैं प्रतारित हो सकता हूं, हो सकता है

कि मुझे रास्ता दिखानेवाली वाणी भगवान्की वाणी न भी हो? फिर भी मैं जानता हूं कि भगवान् उन लोगोंका त्याग नहीं करते जो अज्ञानपूर्वक भी उनपर विश्वास करते हैं, फिर भी मैंने देखा है कि जब वह एकदम धोखा देते हुए प्रतीत होते हैं तब भी वह बुद्धिमत्ताके साथ पथप्रदर्शन करते हैं, फिर भी मैं एक मृत बाह्याचारमें विश्वास रखने और परित्राण पानेके बदले जीवंत भगवान्के जालमें फंस जाना कहीं अधिक पसंद करूंगा।

*

अपनी निजी इच्छा और कामनाके बदले बल्कि शास्त्रके अनुसार कार्य कर, इस तरह तू अपने अंदर विद्यमान लुटेरेको वशीभूत करनेके लिये अधिकाधिक बलशाली बनेगा; परंतु शास्त्रके बदले भगवान्के अनुसार कार्य कर, तब तू उनकी उच्चतम स्थितिको प्राप्त कर लेगा जो नियम-कानून और सीमाबंधनसे बहुत ऊपर है।

*

विधि-विधान उनके लिये है जो बद्ध हैं और जिनकी आंखें बंद हैं; यदि वे उसके अनुसार न चलें तो वे ठोकर खायेंगे; पर तू तो कृष्णके अंदर मुक्त हो चुका है अथवा तूने तो उनकी जीवंत ज्योतिको देख लिया है, तू अपने सखाका हाथ पकड़कर और शाश्वत वेदके प्रकाशमें विचरण कर।

*

बंधन और अहंभावकी इस रजनीमेंसे तुझे बाहर निकाल ले जानेके लिये भगवान्का जो प्रदीप है वही है वेदांत; परंतु जब वेदका प्रकाश तेरे अंतरात्मामें उदित हो चुका है तब उस भागवत प्रदीपकी भी अब तुझे कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि, अब तो तू मुक्त भावसे तथा सुनिश्चित रूपसे उस शाश्वत सूर्यालोकमें विचरण कर सकता है।

*

भला केवल जाननेसे क्या लाभ? मैं तुमसे कहता हूं: कार्य

करो और रहो, क्योंकि इसीलिये भगवान्‌ने तुम्हें इस मानव-शरीरमें भेजा था।

*

भला केवल रहनेसे क्या लाभ? मैं तुमसे कहता हूं, कुछ बनो, क्योंकि इसीलिये जड़तत्त्वके इस जगत्‌में तुम्हें एक मनुष्यके रूपमें स्थापित किया गया था।

*

एक तरहसे कर्मका पथ भगवान्‌की उच्च मार्गत्रयीका अत्यंत कठिन पक्ष है; फिर भी क्या यह, कम-से-कम इस भौतिक जगत्‌में, अत्यंत सहज, अत्यंत विशाल और अत्यंत आनंदपूर्ण भी नहीं है? कारण, हर क्षण ही हम कर्मी भगवान्‌के साथ संघर्ष करते और उनके हजारों दिव्य स्पर्शोंको पाकर उनकी सत्ताके रूपमें वर्द्धित होते हैं।

*

कर्ममार्गकी यही अद्‌भुत विशेपता है कि भगवान्‌के साथ शत्रुता-को भी मुक्तिका साधन वनाया जा सकता है। कभी-कभी भगवान् हमारे भीषण, अजेय और चिर-विरोधी शत्रुके रूपमें हमारे साथ कुश्ती करते-करते अत्यंत तेजीसे हमें अपने पास खींच लेते तथा अपनी छातीसे लगा लेते हैं।

*

क्या मैं मृत्युको स्वीकार करूं अथवा उसकी ओर मुड़कर उसके साथ युद्ध करूं और उसपर विजय प्राप्त करूं? मेरे अंतरस्थ भग-वान् जैसा पसंद करेंगे बस वैसा ही होगा। क्योंकि चाहे मैं जीता रहूं या मर जाऊं, मैं तो बराबर ही हूं।

*

तब भला वह चीज क्या है जिसे तू मृत्यु कहता है? क्या भगवान् मर सकते हैं? ऐ मृत्युसे भयभीत होनेवाले, यह तो स्वयं जीवन ही है जो एक खोपड़ीसे खेलते हुए और आतंकपूर्ण भेष बनाये हुए तेरे पास आया है।

*

शारीरिक अमरत्व प्राप्त करनेका एक उपाय है और मृत्यु हमारी इच्छापर निर्भर करती है न कि प्रकृतिके दवावपर। परंतु एक ही कोटको सौ वर्षोंतक पहने रहना अथवा एक संकीर्ण और परिवर्तनहीन कुटियामें सुदीर्घ शाश्वततातक आवद्ध रहना भला कौन पसंद करेगा ?

*

भय और दुश्चिंता इच्छा-शक्तिके ही विकृत रूप हैं। जिस वातसे तू डरता है और जिसके विषयमें तू निरंतर सोचता रहता है, उसका स्वर वार-वार अपने मनमें वजाकर तू उसीके संपन्न होनेमें सहायता पहुंचाता है; कारण, यदि तेरी जागृत चेतनाकी सतहसे ऊपर रहनेवाली तेरी इच्छाशक्ति उसे हटा देती है तो भी तेरे मनके नीचे जो कुछ है वह उसकी सर्वदा इच्छा किया करता है, और अव-चेतन मन तेरी जागृत शक्ति और वुद्धिकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति-शाली, अधिक विशाल और चरितार्थ करनेके लिये कहीं अधिक अच्छे रूपमें साधनसंपन्न है। परंतु आत्मा एक साथ उन दोनोंसे अधिक प्रवल है; भय और आशासे हटकर आत्माकी महामहिम शांति और निश्चित प्रभुताके अंदर शरण ले।

*

भगवान्‌ने आत्मज्ञानके द्वारा इस असीम विश्वको वनाया और वह आत्मज्ञान अपनी क्रियामें आत्मसिद्धि ले आनेवाली संकल्प-शक्ति भी है। उन्होंने अपनी अनंतताको सीमावद्ध करनेके लिये अज्ञानका उपयोग किया; परंतु भय, क्लांति, अवसाद, आत्मविश्वासहीनता तथा दुर्वलताकी स्वीकृति वे साधन हैं जिनके द्वारा वह अपनी रची हुई चीजोंको नष्ट करते हैं। जव ये सव उन चीजोंपर प्रयुक्त होते हैं जो तेरे अंदर वुरी, हानिकारक तथा कुव्यवस्थित हैं तव उसका फल अच्छा होता है; पर जव वे तेरे जीवन और वल-सामर्थ्यके एकदम मूलस्रोतपर ही आक्रमण करते हैं तव तू उन्हें पकड़कर अपने अंदरसे निकाल फेंक अन्यथा मर जा।

*

मानवताने अपनी ही शक्ति-सामर्थ्य और सुखभोगका नाश करने-के लिये दो मजबूत हथियारोंका उपयोग किया है —— अनुचित इंद्रिय-भोग और अनुचित इंद्रिय-निग्रह।

*

हमारी भूल यह हुई है और बराबर ही रही है कि हम अज्ञानी जीवनकी बुराइयोंसे बचनेके लिये एक उपायके रूपमें संन्यासको ग्रहण करते हैं तथा संन्यासकी बुराइयोंसे बचनेके लिये फिर अज्ञानके जीवन-की ओर लौट आते हैं। हम निरंतर इन दो मिथ्या विरोधियोंके बीच झूला करते हैं।

*

अपने खेलोंमें अत्यंत असंयत रूपमें आमोद करना अच्छा नहीं है और न अपने जीवन और कर्ममें अत्यंत भयंकर रूपसे गंभीर रहना ही अच्छा है। हम दोनोंमें ही आमोदप्रिय स्वतंत्रता और गंभीर सुव्यवस्था प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं।

*

लगभग चालीस वर्षोंतक मैं कई छोटे-छोटे और बड़े-बड़े रोगोंसे निरंतर दुःख भोगता रहा, भीतर संपूर्ण स्वस्थ होते हुए भी मैं बाहर शरीरसे दुर्बल बना रहा और उनसे मुक्त होनेको मैंने एक ऐसा बोझ मान लिया था जिसे प्रकृतिने मेरे ऊपर लाद दिया हो। जब मैंने दवाओंकी सहायताका त्याग कर दिया तब वे बीमारियां हताश उप-जीवी जीवोंकी भांति मुझसे अलग होने लगीं। केवल तब मैंने समझा कि कितनी प्रबल शक्ति मेरे अंदर स्वाभाविक स्वास्थ्यके रूपमें विद्य-मान थी और उससे भी कितनी अधिक सामर्थ्यशाली थी मनको अति-क्रांत करनेवाली वह संकल्पशक्ति और श्रद्धा जिसे भगवान्‌ने हमारे शारीरिक जीवनका दिव्य आधार बननेके लिये नियत किया था।

*

हमारी दुःसाध्य बर्बरताके कारण आधुनिक मानवताके लिये मशीनें आवश्यक हो गयी हैं। यदि हम अपने-आपको घबड़ा देनेवाले आरामों

और साजसामानोंके ढेरसे ढक ही देना चाहें तो हमें कला और उसकी पद्धतियोंके विना ही काम करना चाहियें; क्योंकि सरलता और स्वतंत्रतासे नाता तोड़ देनेका अर्थ है सौंदर्यसे भी नाता तोड़ देना। हमारे पूर्वपुरुषोंकी विलासिता सब तरहसे भरपूर तथा भड़कीली भी थी, पर कभी भाराक्रांत नहीं थी।

*

मैं यूरोपीय जीवनके बर्बरोचित सुख-आराम और भाराक्रांत आडंबरको सभ्यताका नाम नहीं दे सकता। जो मनुष्य अपने अंतरात्मामें मुक्त नहीं हैं और जिनके उपकरणोंमें सुन्दर सुसंगति नहीं है वे सभ्य नहीं हैं।

*

आधुनिक युगमें और यूरोपीय प्रभावके अधीन होकर कला जीवनके ऊपर उगा हुआ एक मस्सा बन गयी है अथवा एक अनावश्यक दासी; परंतु उसे होना चाहिये था उसकी प्रधान कार्यकर्त्री और अनिवार्य व्यवस्थापिका।

# रोग और औषध-विज्ञान

रोग अनावश्यक रूपसे चलता रहता है और जितने प्रसंगोंमें अनिवार्य होता है उससे कहीं अधिक अवसरोंपर मृत्युमें ही जाकर समाप्त होता है, क्योंकि रोगीका मन शरीरकी बीमारीको सहारा देता और उसीकी कल्पना-जल्पना करता रहता है।

*

औषध-विज्ञान मानवजातिके लिये आशीर्वादकी अपेक्षा कहीं अधिक अभिशाप ही सिद्ध हुआ है। इसने महामारियोंकी शक्तिको

भंग कर डाला है और एक अद्‌भुत शल्य-विद्याका आविष्कार किया है, पर, साथ ही, इसने मनुष्यके नैसर्गिक स्वास्थ्यको दुर्बल बना दिया है और व्यक्तिगत रोगोंकी संख्या बढ़ा दी है; इसने मन और शरीरमें भय और पराधीनताकी जड़ जमा दी है; इसने हमारे स्वास्थ्यको प्राकृतिक स्वस्थताका नहीं बल्कि धातुओं और वनस्पतियोंसे निर्मित एक दुर्बल और घृणास्पद लाठीका आश्रय लेना सिखाया है।

*

चिकित्सक एक दवाको एक बीमारीपर प्रयुक्त करता है; कभी-कभी वह सफल होती है और कभी-कभी विफल। विफलताओंका कोई हिसाब नहीं लगाया जाता, महज सफलताओंको एकत्र किया जाता, गिना जाता तथा अंतमें एक विज्ञानके रूपमें प्रणालीबद्ध कर दिया जाता है।

*

ओझाके ऊपर विश्वास करनेके कारण हम असभ्य मनुष्यके ऊपर हंसते हैं; परंतु भला डाक्टरोंपर विश्वास रखनेवाले सभ्य लोग किस तरह कम अंधविश्वासी हैं? असभ्य मनुष्य देखता है कि जब एक विशेष मंत्रका उच्चारण किया जाता है तो वह प्रायः ही एक विशेष रोगसे मुक्त हो जाता है; वह विश्वास करता है। सभ्य रोगी देखता है कि जब उसे एक खास नुस्खेके अनुसार दवा पिला दी जाती है तो वह प्रायः ही एक विशेष रोगसे छुट्टी पा जाता है; वह विश्वास करता है। भला इन दोनोंमें अंतर कहां है?

*

उत्तर भारतका चरवाहा ज्वरसे आक्रांत होनेपर एक घंटे या कुछ अधिक समयतक एक नदीकी शीतल धारामें बैठ जाता है और नीरोग तथा स्वस्थ होकर बाहर निकल आता है। यदि शिक्षित मनुष्य वही कार्य करे तो वह मर ही जायगा, इस कारण नहीं कि एक ही दवा अपने स्वभाववश एकको मार डालती और दूसरेको आराम

करती है, बल्कि इस कारण कि हमारे मनने हमारे शरीरोंको सांघातिक रूपसे झूठी आदतें सिखा दी हैं।

*

ओषधि उतना रोगमुक्त नहीं करती जितना कि चिकित्सक और ओषधिमें रोगीकी श्रद्धा करती है। मनुष्यकी अपनी निजी आत्मशक्तिपर जो स्वाभाविक श्रद्धा-विश्वास होता है उसीके ये दोनों भद्दे प्रतिनिधि हैं और स्वयं इन्होंने ही उस श्रद्धा-विश्वासको नष्ट कर डाला है।

*

मनुष्यजातिकी सबसे अधिक स्वस्थताके युग वे थे जब भौतिक उपचार सबसे कम थे।

*

पृथ्वीपर जो सबसे अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्वास्थ्यवान् जाति बच गयी थी वह थी अफ्रिकाके जंगली लोगोंकी जाति; परंतु उनकी भौतिक चेतना जब सभ्य लोगोंकी मानसिक पथभ्रष्टतासे कलुषित हो चुकी है तब उसके बाद वे कितने समयतक वैसे बने रह सकते हैं?

*

हमें रोगोंको दूर करने और उनसे बचनेके लिये अपनी अंतरस्थ दिव्य स्वस्थताका उपयोग करना चाहिये; परंतु गैलेन (Galen) और हिपोक्रैटिस (Hippocrates)[1] तथा उनके सारे कुनबेने उसके बदले हमारे शरीरसंबंधी सिद्धांतके रूपमें दवाओंका एक भंडार तथा बर्बरोचित लैटिन-जातीय जादूगरी प्रदान की है।

*

औषध-विज्ञान शुभाकांक्षी है और इसका अभ्यास करनेवाले लोग प्रायः दयालु होते हैं और आत्मत्यागी भी कम नहीं होते। परंतु

---

[1]गैलेन और हिपोक्रैटिस प्राचीन यूनानके प्रसिद्ध वैद्य थे। हिपोक्रैटिस ईसासे ४६० वर्ष तथा गैलेन १६० वर्ष पहले हुए थे।

अज्ञानियोंकी शुभाकांक्षाने भला कब उन्हें हानि पहुंचानेसे रोका है?

*

यदि सभी उपचार वास्तवमें और अपने-आप फलप्रद हों और चिकित्साशास्त्रके सभी सिद्धांत ठोस हों तो भी भला वे हमें अपने खोये हुए स्वाभाविक स्वास्थ्य और जीवनी-शक्तिके लिये सांत्वना कैसे दे सकते हैं? विष-वृक्ष अपने सभी अंगोंमें ठोस तो होता ही है पर फिर भी वह होता है विष-वृक्ष ही।

*

हमारा अंतरस्थ आत्मा ही है एकमात्र सर्वसमर्थ धन्वन्तरि और उसके प्रति शरीरका समर्पण ही है एकमात्र सच्चा रामबाण औषध।

*

अंतरस्थ भगवान् अनंत और आत्मसंसिद्धि लानेवाली संकल्पशक्ति हैं। क्या तू मृत्युभयसे अस्पृष्ट रहकर अपने रोगोंको उनके हाथोंमें, एक प्रयोगके रूपमें नहीं बल्कि एक प्रशांत और पूर्ण श्रद्धा-विश्वासके साथ, छोड़ सकता है? तू देखेगा कि अंतमें वह लाख-लाख डाक्टरों-की क्षमताको अतिक्रांत कर जाते हैं।

*

वीस हजार उपायोंसे स्वास्थ्यको सुरक्षित रखना डाक्टरका सिद्धांत है; पर यह शरीरके लिये न तो भगवान्‌का सिद्धांत है और न प्रकृतिका।

*

मनुष्य एक समय स्वभावतः ही स्वस्थ था और यदि उसे मौका दिया जाता तो वह फिरसे उस आदिम स्थितिमें वांपस जा सकता; परंतु औषध-विज्ञान दवाओंके अनगिनत गट्ठर लेकर हमारे शरीरका पीछा करता और निगलनेवाले कीटाणुओंके समूहोंके द्वारा कल्पना-शक्तिपर आक्रमण करता है।

*

कीटाणुओंके कल्पित घेरेसे अपनी रक्षा करनेमें अपना जीवन बिता

देनेकी अपेक्षा मैं मर जाना और जीवनसे नाता तोड़ देना ही अधिक पसंद करूंगा। यदि ऐसा करना बर्बर होना, अज्ञानरूपी अंधकारमें पड़े रहना हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अपने घोर अंधकारका आलिंगन करता हूं।

*

सर्जन काटकर और अपंग बनाकर रक्षा करते और नीरोग करते हैं। तब भला प्रकृतिदेवीके सीधे सर्वशक्तिशाली उपायोंको ही खोज निकालनेकी चेष्टा क्यों न की जाय?

*

औषध-विज्ञानने हमारे मन और शरीरको भय, अपने-आपपर अविश्वास तथा दवाओंके ऊपर अस्वाभाविक स्थूल निर्भरताकी शिक्षा दी है और इसे ही हमारा दूसरा स्वभाव बना दिया है। इस कारण औषधके बदले स्वयं ही अपने-आपको स्वस्थ-नीरोग बना लेनेमें एक लंबे समयका लगना स्वाभाविक ही है।

*

बीमारीमें हमारे शरीरके लिये दवाएं केवल इसलिये आवश्यक हैं कि हमारे शरीरने बिना दवाओंके अच्छा न होनेकी कला सीख ली है। फिर भी, हम प्रायः ही देखते हैं कि प्रकृति उसी क्षणको रोग-मुक्तिके लिये चुनती है जब कि चिकित्सक लोग असंभव समझकर रोगीके जीवनकी आशा छोड़ देते हैं।

*

अपने अंदर विद्यमान आरोग्यदायिनी शक्तिपर अविश्वास करना हम लोगोंका स्वर्गसे स्थूल पतन था। औषध-विज्ञान तथा दोषावह वंशपरंपरा ये भगवान्‌के दो दूत हैं जो हमको लौट जाने और पुनः प्रवेश करनेसे मना करनेके लिये फाटकपर खड़े हैं।

*

मानवशरीरके लिये औषध-विज्ञान एक ऐसी महान् राजशक्तिके समान है जो अपने संरक्षणसे अपेक्षाकृत छोटे राज्यको दुर्बल बना

देती है अथवा एक उदार डाकूके समान है जो अपने शिकारको चित गिरा देता तथा घावोंसे भर देता है जिसमें कि वह अपना जीवन उस क्षत-विक्षत शरीरको नीरोग करने और उसकी सेवा करनेमें ही बिता दे।

*

दवाएं शरीरको उस समय रोगमुक्त करती हैं जब कि वे उसे महज कष्ट ही नहीं देतीं अथवा विषाक्त ही नहीं बना देतीं, बल्कि केवल उस समय नीरोग करती हैं जब कि रोगके ऊपर किये गये उनके भौतिक आक्रमणको आत्माकी शक्ति सहारा देती है; यदि उस शक्तिको खुले तौरपर कार्य करने दिया जाय तो दवाएं तुरन्त अनावश्यक हो जाती हैं।

# भक्ति

मैं भक्त नहीं हूं, क्योंकि मैंने भगवान्‌के लिये संसारका त्याग नहीं किया है। मैं भला उस चीजका त्याग कैसे कर सकता हूं जिसे भगवान्‌ने मुझसे जबर्दस्ती छीन लिया और मेरी इच्छाके विरुद्ध मुझे फिरसे वापस दे दिया? इन चीजोंको समझना मेरे लिये अत्यंत कठिन है।

*

मैं भक्त नहीं हूं, मैं ज्ञानी नहीं हूं, मैं भगवान्‌के लिये कर्म करनेवाला भी नहीं हूं। तब भला मैं क्या हूं? अपने मालिकके हाथोंका एक यंत्र, गोपाल कृष्णके होठोंपर बजनेवाली एक मुरली, भगवान्‌के श्वाससे उड़नेवाली एक पत्ती।

*

भक्ति तबतक पूर्णतः चरितार्थ नहीं होती जबतक वह कर्म और ज्ञान नहीं बन जाती।

यदि तू भगवान्‌को खोजता हो और उन्हें अधिकृत कर ले तो तू तबतक उन्हें न जाने दे जबतक कि तू उनका परम सत्य न जान ले। यदि तू उनका परम सत्य आयत्त कर ले तब तू उनके सर्वांगीण स्वरूपको भी जान लेनेका आग्रह कर। पहला तुझे दिव्य ज्ञान प्रदान करेगा, दूसरा तुझे दिव्य कर्म तथा विश्वमें मुक्त और पूर्ण आनंद प्रदान करेगा।

*

दूसरे लोग भगवान्‌के प्रति अपने प्रेमके लिये गर्व करते हैं। मेरा गर्व यह है कि मैंने भगवान्‌को प्यार ही नहीं किया, बल्कि सच पूछा

जाय तो स्वयं उन्होंने ही मुझे प्यार किया और मुझे ढूंढ़ निकाला और अपना वन जानेके लिये मुझे बाध्य किया।

*

जब मैंने यह जान लिया कि भगवान् एक स्त्री हैं तब मुझे बहुत दूरसे प्रेमकी कुछ बातें मालूम हुईं; परंतु जब मैं स्वयं एक स्त्री बन गया और मैंने अपने स्वामी तथा प्रेमीकी सेवा की केवल तभी मैंने संपूर्णतः प्रेमको जाना।

*

भगवान्के साथ संभोग करना ही वह पूर्ण अनुभव है जिसके लिये इस संसारकी सृष्टि हुई थी।

*

भगवान्से डरनेका मतलब है वास्तवमें उनसे बहुत दूर हट जाना, परंतु लीलामें उनसे डरना नितांत आनंदमयताको ही तीक्ष्ण बना देता है।

*

यहूदी लोगोंने ईश्वर-भीरु मनुष्यका आविष्कार किया; भारतने ईश्वर-ज्ञानी और ईश्वर-प्रेमीका।

*

भगवान्का सेवक जुडिया (Judaea) में पैदा हुआ, परंतु वह अरबोंके बीच बड़ा हुआ। भारतको तो आनंद आता है सेवक-प्रेमीमें।

*

पूर्ण प्रेम भयको निर्वासित कर देता है; पर फिर भी तू उस निर्वासितकी कुछ धीमी छाया और स्मृतिको बनाये रख और वह तेरी पूर्णताको और भी अधिक पूर्ण बना देगा।

*

यदि तेरे अंतरात्माने भगवान्का शत्रु होनेका, उनके आशयोंका विरोध करनेका तथा उनके साथ प्राणांतकारी युद्ध करनेका कभी आनंद नहीं पाया है तो उसने उनके संपूर्ण आनंदका आस्वादन ही नहीं किया है।

*

अगर तुम अपनेको प्यार करनेके लिये भगवान्को बाध्य नहीं कर सकते तो अपने साथ युद्ध करनेके लिये उन्हें बाध्य करो। अगर वह तुम्हें एक प्रेमीका आलिंगन न प्रदान करें तो अपनेको एक योद्धा-का आलिंगन प्रदान करनेके लिये उन्हें बाध्य करो।

*

मेरा अंतरात्मा भगवान्का कैदी है जिसे उन्होंने लड़ाईमें गिरफ्तार किया है; वह अभी भी उस युद्धको, उससे इतनी अधिक दूर होने-पर भी, आनंद और भय और आश्चर्यके साथ याद करता है।

*

जबतक भगवान्ने मुझे आघात पहुंचाया और सताया तबतक मैंने पृथ्वीपर सबसे अधिक दुःख-दर्दसे घृणा की, फिर मुझे यह पता चला कि दुःख-दर्द तो अतिशय आनंदका ही केवल एक विकृत तथा विप-रीत रूप है।

*

भगवान् हमें जो दुःख देते हैं उसके चार स्तर होते हैं: (१) जब वह केवल दुःख ही होता है; (२) जब वह एक ऐसा दुःख होता है जो सुख उत्पन्न करता है; (३) जब वह ऐसा दुःख होता है जो सुख ही होता है; और (४) जब वह शुद्ध रूपमें आनंदका ही एक प्रखर रूप होता है।

*

जब मनुष्य आनंदके उन लोकोंमें ऊपर उठ जाता है जहां दुःखका विलोप हो जाता है, तब भी असह्य आनन्दातिरेकके छद्मवेशमें वह बना रहता है।

*

जब मैं भागवत आनंदके उच्चतर शिखरोंपर निरंतर आरोहण करता जा रहा था तब मैंने अपने-आपसे पूछा कि क्या आनंदकी वृद्धिकी कोई सीमा नहीं है और मैं प्रायः भगवान्के आलिंगनोंसे भय-भीत होने लगा।

*

भगवान्‌से प्रेम करनेपर जो आनंद मिलता है उसके बादका दूसरा महत्तम आनंद वह होता है जो मनुष्यके अंदर भगवान्‌को प्यार करनेसे प्राप्त होता है; वहां भी मनुष्यको बहुत्वका आनंद प्राप्त होता है।

*

एकपत्नीव्रत शरीरके लिये सर्वोत्तम हो सकता है, पर जो जीव मनुष्योंके अंदर भगवान्‌को प्यार करता है वह यहां सर्वदा ही उदार तथा आनंदमय बहुपत्नीकके रूपमें निवास करता है; और फिर भी सब समय —— यही है रहस्य —— वह केवल एक ही सत्ताके प्यारमें डूबा रहता है।

*

समस्त संसार ही मेरा केलि-कुंज है और उसमें रहनेवाली प्रत्येक सजीव सत्ता तथा निर्जीव वस्तु मेरे आनंदका साधन है।

*

कुछ दिनोंतक मैं यह न समझ सका कि मैं सबसे अधिक कृष्ण-को प्यार करता हूं या कालीको; जब मैंने कालीको प्यार किया तब वह अपने-आपको ही प्यार करना था, पर जब मैंने कृष्णको प्यार किया तब मैंने दूसरेको प्यार किया और फिर भी जिसे मैंने प्यार किया वह मेरे सिवा और कोई नहीं था। अतएव मैं कालीसे भी कहीं अधिक कृष्णको प्यार करने लगा।

*

भला एक दिव्य शक्ति, एक दिव्य उपस्थिति और एक देवीके रूपमें प्रकृतिका समादर या पूजन करनेसे क्या लाभ? फिर रसात्मक या कलात्मक रूपसे उसके सौंदर्यका मूल्यांकन करनेसे भी क्या लाभ? बस, गूढ़ बात है उसे अपने अंतरात्माके द्वारा वैसे ही भोग करना जैसे कोई मनुष्य किसी स्त्रीको अपने शरीरसे भोगता है।

*

जब मनुष्यको हृदयके अंदर सूक्ष्मदर्शन प्राप्त होता है तब प्रत्येक

वस्तु ही, प्रकृति और विचार और कार्य, भावनाएं और प्रवृत्तियां और रुचियां तथा विभिन्न विषय — सबके सब दिव्य प्रेमपात्र और परमानंदके स्रोत बन जाते हैं।

*

जो दार्शनिक जगत्को माया कहकर त्याग देते हैं वे बहुत ज्ञानी और तपस्वी और पवित्रात्मा हैं, परंतु कभी-कभी मेरे अंदर यह विचार आये बिना नहीं रहता कि वे ठीक थोड़े मूर्ख भी हैं और वे भगवान्को ऐसा मौका देते हैं कि भगवान् उन्हें खूब आसानीसे धोखा दें।

*

जहांतक मेरा संबंध है, मैं समझता हूं, मुझे यह अधिकार है कि मैं भगवान्पर यह दबाव डालूं कि वह संसारके अंदर तथा संसार-से बाहर भी अपने-आपको दे डालें। यदि वह इस बंधनसे मुक्त होना चाहते थे तो फिर उन्होंने इस संसारको बनाया ही क्यों?

*

मायावादी मेरे साकार ईश्वरको एक स्वप्न बतलाता है और निराकार ब्रह्मका स्वप्न देखना अधिक पसंद करता है; बौद्धधर्मी उसे भी एक मिथ्या कल्पना कहकर एक किनारे टाल देता है और निर्वाण तथा शून्यके आनंदका स्वप्न देखना पसंद करता है। इस तरह सभी स्वप्नद्रष्टा एक-दूसरेके दर्शनकी निंदा करने तथा अपने निजी दर्शनको ही निर्भूल सत्य घोषित करनेमें व्यस्त हैं। जिस वस्तुमें अंतरात्मा नितांत आनंदका उपभोग करता है बस वही विचारके लिये चरम सद्वस्तु है।

*

व्यक्तित्वके परे मायावादीको अनिर्वचनीय सत्ता दिखायी देती है; मैंने वहांतक उसका अनुसरण किया और सबसे परे एक अनिर्वच-नीय व्यक्तित्वके अंदर अपने कृष्णको विद्यमान पाया।

*

जब मैंने सबसे पहले कृष्णको देखा तब मैंने उन्हें एक मित्र और खेलके साथीके रूपमें प्यार किया, परंतु उन्होंने मुझे धोखा दिया; फिर तो मैं कुपित हो गया और उन्हें क्षमा न कर सका। उसके बाद मैंने उन्हें एक प्रेमीके रूपमें प्यार किया और उन्होंने फिर मुझे धोखा दिया; अब मैं दुवारा और बहुत अधिक क्रोधित हो गया, परंतु इस बार मुझे उन्हें क्षमा करना पड़ा।

*

अपराध करनेके बाद उन्होंने मुझे क्षमा करनेके लिये बाध्य किया, पर उसकी क्षतिपूर्ति करके नहीं वरन् नवीन अपराध करके।

*

जबतक भगवान् मेरे प्रति किये हुए अपने दोषोंका परिमार्जन करनेकी चेष्टा करते रहे तबतक हम दोनों समय-समयपर झगड़ते रहे; परंतु उन्होंने जब अपनी भूल जान ली तब झगड़ा बंद हो गया, क्योंकि तब मुझे पूर्ण रूपसे उन्हें आत्म-समर्पण कर देना पड़ा।

*

जबतक मै संसारमें दूसरोंको कृष्ण और अपनेसे भिन्न देखता रहा तबतक मैंने अपने साथ किये हुए भगवान्के कार्योंको गुप्त रखा; परंतु जबसे मैंने सर्वत्र उनको और अपनेको देखना आरंभ कर दिया तबसे मैं निर्लज्ज और वाचाल बन गया हूं।

*

जो कुछ मेरे प्रेमीके पास है वह सब मेरा है। तब जो अलंकार उसने मुझे दिये हैं उन्हें दिखानेपर तुम मुझे गालियां क्यों देते हो?

*

मेरे प्रेमीने अपने सिर और गलेसे अपना राजकीय मुकुट और हार उतार लिया और उन्हें मुझे पहना दिया; परंतु संतों और नबियोंके शिष्योंने मुझे गालियां दीं और कहा, "वह सिद्धियोंके पीछे पागल है।"

*

मैंने इस जगत्‌में अपने प्रेमीकी आज्ञाका पालन किया और बंदी बनानेवाले अपने मालिककी इच्छा पूरी की; परंतु वे गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगे, "युवकोंको भ्रष्ट करनेवाला, नैतिकताका नाश करनेवाला भला यह कौन है?"

*

अगर मैंने तुम्हारी प्रशंसाओंकी परवाह की होती, ऐ साधु-संतो, अगर मैंने अपनी मान-प्रतिष्ठाका पोषण किया होता, ऐ नबियो, तो मेरे प्रेमीने मुझे कभी अपनी छातीसे न लगाया होता और न अपने निभृत कक्षकी स्वतंत्रता ही प्रदान की होती।

*

मैं अपने प्रेमीके आनंदमें मत्त हो गया था और मैंने संसारके राजपथपर ही अपने शरीरसे संसारका जामा फेंक दिया। मैं भला इस बातकी परवा क्यों करूं कि संसारी लोग मेरा उपहास करते और धर्मांध लोग अपने मुंह फेर लेते हैं?

*

तेरे प्रेमीके लिये, हे भगवान्! संसारकी गाली जंगली मधु है और जनताका पत्थर मारना शरीरपर ग्रीष्मकालकी वर्षा है। कारण, क्या तू स्वयं ही गाली नहीं देता और पत्थर नहीं मारता, और क्या तू ही उन पत्थरोंमें रहकर मुझे नहीं मारता और चोट नहीं पहुंचाता?

*

भगवान्‌में दो ऐसी चीजें हैं जिन्हें मनुष्य अशुभ कहते हैं, एक तो वह जिसे वे एकदम समझ ही नहीं पाते और दूसरी वह जिसे वे ठीक-ठीक नहीं समझते तथा जिसे पाकर दुर्व्यवहार करते हैं; जिस चीजको वे अंधेकी भांति आधे व्यर्थ रूपमें समझनेकी चेष्टा करते हैं तथा अस्पष्ट रूपमें समझते हैं केवल उसे ही वे शुभ और पवित्र कहते हैं। परंतु मेरे लिये तो उनके अंदरकी सभी चीजें प्रिय हैं।

*

वे कहते हैं, हे मेरे भगवान्, कि मैं पागल हूं, क्योंकि तेरे अंदर

मुझे कोई दोष नहीं दिखायी देता; परंतु मैं यदि सचमुच तेरे प्रेमसे पागल हो गया हूं तो मैं अपने पागलपनसे मुक्त होना नहीं चाहता।

*

"भूल-भ्रांति, मिथ्यात्व, पद-स्खलन!" वे चिल्लाते हैं। कितनी उज्ज्वल और मनोरम हैं तेरी भूलें, हे प्रभु! तेरा मिथ्यात्व सत्यकी रक्षा करता और उसे जीवित बनाये रखता है; तेरा पदस्खलन संसारको पूर्ण बनाता है।

*

जीवन, जीवन, जीवन — बस, यही आवेगपूर्ण चिल्लाहट मैं सुनता हूं; भगवान्, भगवान्, भगवान् — बस, यही है अंतरात्माका उत्तर। जबतक तू एकमात्र भगवान्के रूपमें जीवनको नहीं देखता और प्यार नहीं करता तबतक स्वयं जीवन तेरे लिये एक मुहरबंद आनंद ही बना रहेगा।

*

इंद्रियां कहती हैं, "वह उस (स्त्री) को प्यार करता है"; परंतु अंतरात्मा कहता है, "भगवान्, भगवान्, भगवान्"। बस, यही है संसारका सर्वग्राही सिद्धांत।

*

यदि तू अत्यंत घृणित कीट तथा अत्यंत अधम अपराधीको प्यार नहीं कर सकता, तब भला तू यह कैसे विश्वास कर सकता है कि तूने अपने अंतरमें भगवान्को स्वीकार कर लिया है?

*

संसारको पृथक् छोड़कर भगवान्को प्यार करनेका मतलब है तीव्रताके साथ पर अपूर्ण रूपमें उनकी पूजा करना।

*

क्या प्रेम केवल ईर्ष्याका ही एक पुत्र या दास है? यदि कृष्ण चंद्रावलीको प्यार करते हैं तो फिर मुझे भी उसे क्यों नहीं प्यार करना चाहिये?

*

चूंकि तू केवल भगवान्‌को ही प्यार करता है इसलिये तू यह दावा करनेके लिये तैयार हो जाता है कि उन्हें दूसरोंकी अपेक्षा तुझे ही प्यार करना चाहिये; परंतु यह झूठा दावा है और न्याय तथा वस्तुओंके स्वभावके विपरीत है। क्योंकि भगवान् एक हैं और तू अनेकमेंसे एक है। वल्कि तू अपने हृदय और आत्मामें सर्वभूतके साथ एक बन जा और तव उनके प्यार करनेके लिये एकमात्र तेरे सिवा और कोई रह ही नहीं जायगा।

*

मेरा झगड़ा तो उन लोगोंके साथ है जो इतने मूर्ख हैं कि मेरे प्रेमीको प्यार ही नहीं करते, उनके साथ नहीं जो मेरे साथ उनके प्रेममें हिस्सा वंटाते हैं।

*

जिन लोगोंको भगवान् प्यार करते हैं उन्हें देखकर आनंद मना; जिन लोगोंको प्यार नहीं करनेका वह दिखावा करते हैं, उनपर दया कर।

*

क्या तू अनीश्वरवादीसे घृणा करता है क्योंकि वह भगवान्‌को प्यार नहीं करता? तव क्या तुझसे भी घृणा करनी चाहिये क्योंकि तू भगवान्‌को पूर्ण रूपसे प्यार नहीं करता?

*

विशेष रूपसे एक चीज ऐसी है जिसमें संप्रदाय और मठ-मंदिर शैतानको आत्म-समर्पण कर देते हैं, और वह है उनका अभिशाप। जव पुरोहित अभिशापपूर्ण मंत्रोंका गान करता है तब मैं एक शैतान-को ही प्रार्थना करता हुआ देखता हूं।

*

इसमें संदेह नहीं कि जब पुरोहित अभिशाप देता है तब वह भगवान्‌से ही प्रार्थना करता है; पर वह क्रोध तथा अंधकारका भग-वान् होता है जिसे वह अपने शत्रुके साथ-साथ अपने-आपको समर्पित

करता है; कारण, जैसे वह भगवान्‌के समीप उपस्थित होता है वैसे ही वह भी उसे ग्रहण करते हैं—**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**।

*

शैतानने मुझे तबतक बहुत अधिक परेशान किया जबतक कि मैंने यह नहीं जान लिया कि वास्तवमें भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे; उसके बाद उससे प्राप्त होनेवाली सारी पीड़ा मेरी अंतरात्मामेंसे सदाके लिये बाहर निकल गयी।

*

मैं शैतानको घृणा करता था और उसकी परीक्षाओं तथा उसके उत्पीड़नोंसे घबड़ा उठा था; और मैं यह नहीं कह सकता था कि उसके विदाईके शब्दोंमें इतनी मिठास क्यों थी कि जब कभी वह वापस जाता था और अपने-आपको मेरे प्रति समर्पित करता था तब प्रायः मैं बड़े कष्टके साथ ही उसे अस्वीकार करता था। फिर मुझे पता चला कि वास्तवमें वह तो स्वयं कृष्ण थे जो मुझसे छलना कर रहे थे और तब मेरी घृणा ठहाकेमें बदल गयी।

*

संसारमें जो बुराई है उसकी व्याख्या उन्होंने यह कहकर की कि शैतानने ईश्वरको पराजित कर दिया था। परंतु मैं कहीं अधिक गर्वके साथ अपने परमप्रियकी बात सोचता हूं। मेरा विश्वास है कि चाहे स्वर्गमें हो या नरकमें, जलमें हो या थलमें, कहीं भी उसकी इच्छाके सिवा और कुछ नहीं होता।

* * *

अपने अज्ञानमें हम बच्चोंके जैसे हैं, हम सीधे और बिना सहायताके चलनेमें प्राप्त अपनी सफलतापर गर्व करते हैं तथा चलनेके लिये इतना उत्सुक रहते हैं कि अपने कंधोंपर अपनी मांके संभालने-

वाले स्पर्शको अनुभव ही नहीं करते। जब हम जगते हैं तब हम पीछे ताकते हैं और देखते हैं कि भगवान् सर्वदा ही हमारा पथप्रदर्शन कर रहे थे और हमें पकड़े हुए थे।

*

पहले-पहल जब कभी मैं पापमें जा गिरता, मैं रोया करता और अपने ऊपर क्रोधित होता तथा उसे करने देनेके लिये भगवान्से भी नाराज हो जाता। पीछे मैं इतनी दूरतक जा पहुंचा कि मैं यह पूछनेका साहस कर सका, "हे मेरे बाल-सखा! तूने मुझे फिर कीचड़में क्यों डुबो दिया है?" फिर यह बात भी मेरे मनको बहुत दुस्साहसिक और धृष्टतापूर्ण प्रतीत हुई; बस, मैं चुपचाप केवल खड़ा हो गया, अपनी आंखोंकी कनखियोंसे उनकी ओर ताका और अपने-आपको धो डाला।

*

भगवान्ने जीवनको ऐसे व्यवस्थित किया है कि संसार अंतरात्माका पति बन गया है; कृष्ण हैं उसके दिव्य यार। हमारे ऊपर संसारकी सेवा करनेका एक ऋण है और हम उससे एक विधानके द्वारा, एक बाध्य करनेवाले मतके द्वारा तथा दुःख और सुखके एक सार्वजनीन अनुभवके द्वारा बंधे हुए हैं, परंतु हमारे हृदयकी पूजा और हमारी शक्ति और गुप्त आनंद तो हमारे दिव्य प्रेमीके लिये ही हैं।

*

भगवान्का आनंद गूढ़ और अद्भुत है; यह एक रहस्यकी वस्तु है और एक ऐसा परमोल्लास है जिसपर साधारण समझ उपहास करनेके लिये मुंह बनाया करती है, परंतु जिस आत्माने उसे एक बार चख लिया है वह कभी उसका त्याग नहीं कर सकता, भले ही उसके कारण संसारमें हमें चाहे जितनी भी बदनामी, पीड़ा और परेशानी क्यों न उठानी पड़े।

*

भगवान्, जगद्गुरु, तेरे मनसे कहीं अधिक ज्ञानी हैं; बस, उन्हीं-पर विश्वास रख, न कि उस चिर-स्वार्थपरायण और उद्धत संदेह-वादीपर।

*

अविश्वासी मन सर्वदा ही संदेह करता है, क्योंकि वह समझ नहीं सकता, परंतु भगवत्प्रेमीका विश्वास जाननेकी चेष्टा करता रहता है यद्यपि वह जान नहीं सकता। हमारे अंधकारके लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं। परंतु इस विषयमें कोई संदेह नहीं कि उन दोनों-मेंसे अधिक शक्तिशाली कौन है। जिसे मैं अभी नहीं समझ सकता उसे मैं किसी दिन आयत्त कर लूंगा, पर मैं यदि विश्वास और प्रेमको ही खो बैठूं तो मैं एकदम उस लक्ष्यसे ही भ्रष्ट हो जाऊंगा जिसे भगवान्ने मेरे सामने स्थापित किया है।

*

मैं भगवान्से, अपने पथप्रदर्शक और गुरुसे, प्रश्न कर सकता और यह पूछ सकता हूं कि "क्या मैं सही हूं अथवा अपने प्रेम और ज्ञानके वश तूने मेरे मनको मुझे धोखा देनेका मौका दिया है?" यदि तू चाहे तो अपने मनपर संदेह कर, पर इस बातपर संदेह न कर कि भगवान् तुझे पथ दिखा रहे हैं।

*

चूंकि तुझे सर्वप्रथम भगवान्के विषयमें अपूर्ण धारणाएं दी गयी थीं इसलिये अब तू नाराज हो रहा है और उन्हें अस्वीकार कर रहा है। ऐ मनुष्य! क्या तू अपने शिक्षकपर संदेह करता है क्योंकि उसने तुझे आरंभमें ही सारा ज्ञान नहीं दे दिया था? बल्कि तू उस अपूर्ण सत्यका अध्ययन कर और उसे यथास्थान रख दे जिसमें कि तू सुरक्षित रूपमें उस विशालतर ज्ञानतक जा सके जो कि अब तेरे सम्मुख उद्घाटित हो रहा है।

*

बस, यही तरीका है जिससे भगवान् अपने प्रेमवश शिशु अंत-

रात्मा तथा दुर्बल प्राणीको शिक्षा देते हैं — वे उन्हें एक-एक पग आगे ले जाते हैं तथा अपने चरम एवं अभी अप्राप्य पर्वतशृंगोंका उन्हें दर्शन नहीं होने देते। और, क्या हम सबके अंदर कोई-न-कोई दुर्बलता नहीं है? क्या उनकी दृष्टिमें हम सबके सब केवल नन्हेंसे बच्चे ही नहीं हैं?

*

यह मैंने देख लिया है कि जो कुछ भगवान्‌ने मुझे नहीं दिया है उसे उन्होंने अपने प्रेम तथा ज्ञानके वश ही नहीं दिया है। यदि उस समय उसे मैंने पकड़ लिया होता तो मैंने किसी महान् अमृतको एक महान् विषमें बदल दिया होता। फिर भी कभी-कभी, जब हम हठ करते हैं तब, भगवान् हमें विष पीनेके लिये दे देते हैं जिसमें कि हम उससे मुंह-मोड़ना सीख सकें तथा ज्ञानपूर्वक उनके दिव्य भोग और अमृतरसका आस्वादन कर सकें।

*

आज नास्तिकको भी यह देखनेकी क्षमता होनी चाहिये कि सृष्टि किसी असीम और शक्तिशाली उद्देश्यकी ओर अग्रसर हो रही है, उस उद्देश्यकी ओर जिसे क्रमविवर्तन अपने स्वभाववश ही स्वीकार करता है। परंतु असीम उद्देश्य और उसकी परिपूर्त्ति यह बात पहले ही स्वीकार कर लेती है कि कोई असीम ज्ञान है जो तैयार करता, रास्ता दिखाता, गढ़ता, रक्षा करता और समर्थन करता है। तब उस दिव्य ज्ञानका आदर कर और, यदि मंदिरके अंदर धूपबत्तीके द्वारा नहीं तो, अपने अंतरात्माके अंदर चिंतनके द्वारा उसकी पूजा कर और यदि तू अनंत प्रेमवाले हृदयको तथा अनंत आत्म-ज्योतिवाले मनको अस्वीकार भी करे तो भी तू उसकी पूजा कर। तब तू देखेगा कि, यद्यपि तू इसे जानता नहीं, तू जिसका आदर करता और पूजा करता है वह फिर भी हैं श्रीकृष्ण ही।

*

हमारे प्रेमेश्वरने कहा है, "जो लोग अज्ञेय और अनिर्देश्यकी

उपासना करते हैं वे मेरी ही उपासना करते हैं और मैं उन्हें स्वीकार करता हूं।" उन्होंने अपनी वाणीके द्वारा मायावादी और अज्ञेयवादीका समर्थन किया है। तब, हे भक्त, तू भला उसकी निंदा क्यों करता है जिसे तेरे परम प्रभुने स्वीकार किया है?

*

जिस कालविन (Calvin)[1] ने शाश्वत नरकके अस्तित्वका प्रतिपादन किया, उसने भगवान्को नहीं जाना था, बल्कि उसने उनके एक भयावह छद्मवेशको ही उनका शाश्वत सत्य बना दिया। यदि कोई नित्य नरक हो तो वह केवल नित्य आनंदोल्लासका ही एक निवासस्थान हो सकता है; क्योंकि भगवान् आनंद हैं और उनके आनंदकी शाश्वतताके अतिरिक्त दूसरी कोई शाश्वतता है ही नहीं।

*

दांते (Danté)[2] ने जब यह कहा था कि भगवान्के पूर्ण प्रेमने ही शाश्वत नरककी सृष्टि की थी तब संभवतः उसने जो कुछ जाना था उससे कहीं अधिक ज्ञानकी बात ही लिखी थी; क्योंकि यदा-कदा प्राप्त होनेवाली झांकियोंके द्वारा मुझे यह धारणा हो गयी है कि कोई एक नर्क है जहां हमारे अंतरात्मा युगों असह्य आनंदका उपभोग करते हैं तथा मधुर और भयंकर रुद्रकी एकांत गोदमें मानो चिरदिन लोटा करते हैं।

*

जगद्गुरु भगवान्का शिष्य बनना, जगत्पिता भगवान्का पुत्र होना, जगन्माता भगवान्का स्नेह पाना, दिव्य सुहृद्का हाथ पकड़े रहना, अपने दिव्य सहचर तथा बाल-सखाके साथ हंसना और खेलना, प्रभु भगवान्की आनंदपूर्वक सेवा करना, अपने दिव्य प्रेमीको उल्लासके साथ प्रेम करना — मानवशरीरके अंदर जीवनके ये सात प्रकारके

---

[1]सोलहवीं शताब्दीके एक प्रसिद्ध सुधारक और लेखक।

[2]इटलीके सर्वश्रेष्ठ कवि।

आनंद हैं। क्या तू इन सबको एक ही सर्वोत्तम और सतरंगी संबंध-के अंदर युक्त कर सकता है? तब तुझे किसी स्वर्गकी आवश्यकता नहीं रह जायगी और तू अद्वैतवादीकी मुक्तिको भी अतिक्रम कर जायगा।

*

कब यह संसार स्वर्गकी प्रतिमूर्ति बन जायगा? जब समूची मानवजाति बालक और बालिकायें बन जायगी और उनके साथ-साथ स्वयं भगवान् भी कृष्ण और कालीके रूपमें प्रकट हो जायेंगे, जो कि उस दलके सबसे अधिक प्रसन्न बालक और सबसे अधिक शक्तिशाली बालिका होंगे और स्वर्गके बगीचेमें एक संग खेलेंगे। यहूदियोंका 'इडेन' (Eden) काफी अच्छा था, पर आदम और हौवा (Adam and Eve) इतनी अधिक बड़ी उम्रके थे और स्वयं उनके भगवान् भी इतने अधिक वृद्ध और कठोर और गंभीर थे कि सर्पके प्रस्तावके विरुद्ध नहीं चल सके।

*

यहूदियोंने एक ऐसे भगवान्की कल्पना करके मनुष्यजातिको व्यथित किया है जो एक कठोर और महाप्रतापी राजा है, नियम-निष्ठ विचारकर्ता है और जिसका हास्य-उल्लाससे कोई सरोकार नहीं। परंतु हम लोग, जिन्होंने कृष्णको देखा है, यह जानते हैं कि वह एक बालक है जो खेलनेके बड़े शौकीन हैं तथा एक बच्चे हैं जो शरारत और सुखदायी खिलखिलाहटसे भरे रहते हैं।

*

जो भगवान् हंस नहीं सकता वह इस हास्यजनक विश्वका निर्माण भी नहीं कर सकता था।

*

भगवान्ने एक बच्चेको दुलारनेके लिये अपनी आनंदमय गोदमें ले लिया, परंतु मां रोने लगी और उसे सान्त्वना नहीं दी जा सकी, क्योंकि उसके बच्चेका अब कोई अस्तित्व ही नहीं था।

*

जव मैं किसी दुःख या शोक या दुर्भाग्यके कारण कष्ट पाता हूं तव कहता हूं, "अच्छा, मेरे पुराने खेलके साथी, तूने फिर मुझे सताना आरंभ कर दिया है", और फिर मैं दुःखका सुख, शोकका हर्ष तथा दुर्भाग्यका सौभाग्य उपलव्ध करनेके लिये वैठ जाता हूं; तव भगवान् देखते हैं कि उन्हें मैंने पकड़ लिया और वह अपने भूतों तथा हौओंको मुझसे हटा लेते हैं।

*

जव दिव्य ज्ञानका साधक यह वृत्तांत सुनता है कि किस तरह कृष्णने गोपियोंके वस्त्र चुरा लिये तो उसे उसमें जीवके साथ शिव-के व्यवहार करनेके तरीकोंका एक अत्यंत गहरा रूपक दिखायी देता है, भक्तको अपने हृदयकी गुह्य अनुभूतियोंकी भागवत कर्मके रूपमें एक पूर्ण अभिव्यक्ति दिखायी देती है और लंपट तथा अतिनैतिक (एक ही मनोभावके दो रूप) को महज कामुकतापूर्ण एक कहानी दिखायी देती है। स्वयं अपने अंदर जो कुछ होता है उसे ही मनुष्य सामने लाते और उसे शास्त्रोंमें प्रतिफलित देखते हैं।

*

मेरे प्रेमीने पापके मेरे वस्त्रको उतार लिया और मैंने उसे खुशीसे जाने दिया। तव उन्होंने पुण्यके मेरे वस्त्रको खींचा, परंतु मैं लज्जित और भयभीत हो उठा और उन्हें रोक दिया। परंतु जव उन्होंने उसे जवर्दस्ती मुझसे छीन लिया केवल तभी मुझे यह पता चला कि कैसे मेरा अंतरात्मा मुझसे छिपा हुआ था।

*

पाप श्रीकृष्णकी एक चालाकी और एक छद्मवेश है जिससे वह धर्मात्माओंकी दृष्टिसे अपने-आपको छिपा रखते हैं। ऐ धर्मांध! पापीके अंदर भगवान्को देख, अपने अंदर पापको देख जो तेरे हृदयको पवित्र वना रहा है और अपने भाईको छातीसे लगा।

*

भगवान्‌के प्रति प्रेम, मनुष्योंके प्रति उदारता — बस, यही पूर्ण ज्ञानकी ओर जानेका पहला पग है।

*

जो असफलता और अपूर्णताकी निंदा करता है, वह भगवान्‌की निंदा करता है; वह अपने निजी आत्माको सीमित करता और अपनी निजी दृष्टिको धोखा देता है। निंदा मत कर, बल्कि प्रकृतिका निरीक्षण कर, अपने भाइयोंकी सहायता कर और उन्हें स्वस्थ बना तथा अपनी सहानुभूतिके द्वारा उनकी क्षमता और साहसको प्रबल बना।

*

पुरुषके प्रति प्रेम, स्त्रीके प्रति प्रेम, चीजोंके प्रति प्रेम, अपने पड़ोसीके प्रति प्रेम, अपने देशके प्रति प्रेम, पशुओंके प्रति प्रेम, मनुष्य-जातिके प्रति प्रेम आदि ये सभी भगवान्‌के प्रति प्रेम हैं जो इन सजीव प्रतिमाओंके अंदर प्रतिफलित होता है। प्रेम करना और शक्ति-शाली बनना है सब कुछ उपभोग करना, सबको सहायता देना और नित्य-निरंतर प्रेम करते रहना।

*

यदि ऐसी चीजें हों जो रूपांतरित होना एकदम अस्वीकार करती हों अथवा संशोधित होकर भगवान्‌की अधिक पूर्ण प्रतिमा बननेसे इंकार करती हों तो हृदयमें कोमलता, पर प्रहार करनेमें निष्ठुरता रखकर उनका विनाश किया जा सकता है। परंतु सबसे पहले इस विषयमें निःसंदिग्ध हो जा कि भगवान्‌ने ही तुझे तेरी तलवार और तेरा कार्य प्रदान किया है।

*

मुझे अपने पड़ोसीको प्यार करना चाहिये, पर इसलिये नहीं कि वह हमारे पड़ोसमें रहता है,— क्योंकि आखिर पड़ोसमें और दूरमें क्या रखा है? और न इसलिये कि धर्म मुझे यह सिखाते हैं कि वह मेरा भाई है, — क्योंकि उस भ्रातृत्वका भला मूल कहांपर है?

बल्कि इसलिये कि वह स्वयं मेरा आत्मा है। पड़ोस और दूरी शरीरको प्रभावित करते हैं पर हृदय उनसे परे चला जाता है। भ्रातृत्व रक्तका या देशका या धर्मका या मानवताका होता है, पर जब स्वार्थ अपनी परिपूर्त्तिके लिये चिल्लाता है तब भला इस भ्रातृत्व-का क्या हाल होता है? जब मनुष्य भगवान्‌में निवास करता है और अपने मन, हृदय और शरीरको उनकी विश्वव्यापी एकताकी प्रति-मूर्त्तिमें बदल देता है केवल तभी उस गभीर, निःस्वार्थ एवं दुर्धर्ष प्रेमको पाना संभव होता है।

*

जब मैं श्रीकृष्णमें निवास करता हूं तब अहंकार और स्वार्थ विलीन हो जाते हैं। केवल भगवान् ही मेरे प्रेमको अतल और असीम बना सकते हैं।

*

श्रीकृष्णमें निवास करनेपर शत्रुता भी प्रेमकी ही एक क्रीड़ा तथा भाइयोंका मल्लयुद्ध बन जाती है।

*

जिस जीवने उच्चतम आनंदको हस्तगत कर लिया है उसके लिये जीवन कोई अशुभ वस्तु या कोई दुःखदायी भ्रम नहीं हो सकता; बल्कि उसके लिये तो सारा जीवन ही किसी दिव्य प्रेमी तथा बालसखाका लहराता प्रेम और हास्य बन जाता है।

*

क्या तू भगवान्‌को निराकार अनंतके रूपमें देख सकता और फिर भी उन्हें वैसे ही प्यार कर सकता है जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रेमिकाको प्यार करता है? तभी ऐसा कहा जा सकता है कि अनंतका उच्चतम सत्य तेरे सम्मुख प्रकट हो गया है। फिर तू क्या अनंतको एक गुप्त, आलिंगन करने योग्य शरीर प्रदान कर सकता है और ये जो दृश्य और ग्राह्य शरीर हैं उनमेंसे प्रत्येकमें और सबमें उन्हें देख सकता है? तभी ऐसा कहा जा सकता है कि उसका

विशालतम और गभीरतम सत्य भी तेरे अधिकारमें आ गया है।

*

भागवत प्रेम एक साथ द्विविध क्रीड़ा करता है — उसकी एक तो विश्वव्यापी गति होती है जो पातालके समुद्रकी तरह गभीर, शांत और अतल होती है, जो समग्र जगत्के ऊपर तथा उसके अंदरकी प्रत्येक चीजके ऊपर झुकी रहती है मानो किसी समतल भूमिपर एक समान दबाव डालकर झुकी हुई हो, और दूसरी शाश्वत गति होती है जो उसी समुद्रकी नर्तनकारी सतहकी तरह शक्तिशाली, तीव्र और आनंदपूर्ण होती है जो अपनी तरंगोंके बल और पराक्रमको बदलती रहती हैं तथा उन वस्तुओंको चुनती है जिनपर वह अपने फेन और फुहारेके चुंबन देती हुई तथा अपने सर्वावगाही जलसे आलिंगन करती हुई गिरना चाहती है।

*

मैं पहले दुःख-दर्दको घृणा किया करता, उससे बचनेकी चेष्टा किया करता तथा उसके आगमनपर रोष किया करता। परंतु अब मैं देखता हूं कि यदि मैंने दुःख न भोगा होता तो मैंने, इस प्रकार सुशिक्षित और पूर्ण बनकर, अपने मन, हृदय और शरीरमें आनंद भोग करनेकी असीम और असंख्य रूपसे बोधक्षम इस क्षमताको अभी आयत्त न किया होता। जब भगवान् एक निर्दयी और अत्याचारी व्यक्तिके रूपमें अपने-आपको छिपाये रखते हैं तो भी अंतमें वह अपने पक्षकी यथार्थता सिद्ध करते हैं।

*

मैंने शपथ ली कि मैं संसारके शोक-ताप और संसारकी मूढ़ता, निर्दयता तथा अन्यायसे कभी दुःख नहीं पाऊंगा और मैंने अपने हृदय-को सहनशीलतामें पाताल-लोककी चक्कीकी तरह कठोर बना लिया एवं अपने मनको इस्पातकी चिकनी सतहके समान। अब मुझे कोई कष्ट नहीं होता था, पर सुख-भोगकी क्षमता भी मैं खो बैठा था। फिर भगवान्ने मेरा हृदय चूर-चूर कर डाला और मेरे मनको जोत

डाला। उसके बाद मैं निर्दय और अविराम यातनाके भीतरसे गुजर-कर एक सुखकारी दुःखहीनताके अंदर तथा शोक, क्रोध और विद्रोहके भीतरसे होकर एक अनंत ज्ञान एवं एक सुस्थिर शांतिके अंदर जा पहुंचा।

*

जब मैंने यह जाना कि दुःख आनंदकी ही उलटी पीठ है और उसीकी प्राप्तिका साधन है तब मैं अपने ऊपर आघातोंकी बौछारका स्वागत करने लगा तथा अपने सारे अंगोंमें पीड़ा बढ़ाने लगा; क्योंकि उस समय भगवान्‌का उत्पीड़न भी मुझे धीमा और स्वल्प और अपर्याप्त प्रतीत होता था। तब मेरे परमप्रेमीको मेरा हाथ पकड़-कर रोकना पड़ा और चिल्लाकर कहना पड़ा, "बंद करो; क्योंकि मेरे कोड़े ही तुम्हारे लिये काफी हैं।"

*

पुराने युगके साधुओं तथा अनुतप्तोंका अपने-आपको पीड़ा पहुंचाना उलटे पथ चलना और मूर्खतासे पूर्ण था; फिर भी उनकी स्वभाव-विकृतिके पीछे ज्ञानका एक प्रच्छन्न रूप विद्यमान था।

*

भगवान् हमारे विज्ञ और पूर्ण मित्र हैं, क्योंकि वह एक साथ ही यह जानते हैं कि कब तो थप्पड़ लगाना चाहिये और कब पुच-कारना चाहिये, कब तो हमारी हत्या करनी चाहिये और, उससे भी कहीं अधिक, कब हमारी रक्षा और सहायता करनी चाहिये।

*

समस्त प्राणियोंके दिव्य सुहृद् शत्रुका चेहरा पहनकर अपनी मित्रताको तबतक छिपाये रखते हैं जबतक कि वह उच्चतम स्वर्गोंके योग्य हमें नहीं बना लेते; उसके बाद, जैसा कि कुरुक्षेत्रमें हुआ था, युद्ध, यंत्रणा तथा विनाशके देवताका भयंकर रूप हट जाता है और श्रीकृष्णकी मधुर मूर्ति, करुणा तथा पुनः-पुनः आलिंगित देह

उनके चिर-साथी और बाल-सखाके थरथराते आत्मा तथा शुद्ध नेत्रोंके सामने चमक उठती हैं।

*

यंत्रणा हमें आनंदके अधीश्वरकी संपूर्ण शक्ति धारण करनेके योग्य बनाती है; यह हमें बल-वीर्यके अधीश्वरकी दूसरी लीलाको सहन करनेकी क्षमता भी प्रदान करती है। दुःख वह कुंजी है जो बल-सामर्थ्यका द्वार उन्मुक्त करती है; दुःख वह राजपथ है जो हमें आनंद-नगरीतक पहुंचा देता है।

*

फिर भी, ऐ मानवात्मा, दुःखकी खोज मत कर, क्योंकि वह भगवान्‌की इच्छा नहीं है, केवल उनके आनंदकी ही खोज कर; दुःख-कष्टका जहांतक प्रश्न है, वह तो निश्चित रूपसे उनके विधानके अनुसार उतनी बार और उतनी मात्रामें तेरे पास आयेगा ही जितनी बार और जितनी मात्रामें आना तेरे लिये आवश्यक है। उस समय उसे सहन कर जिसमें कि तू अंतमें उनके आनंदोल्लाससे भरे हृदयका आविष्कार कर सके।

*

और न तू, ऐ मनुष्य, अपने साथीपर ही कोई दुःख-कष्ट फेंक; दुःख पहुंचानेका अधिकार एकमात्र भगवान्‌को ही है; अथवा उन्हें है जिनपर स्वयं भगवान्‌ने उसका भार सौंपा है। परंतु धर्मांधताके वश ऐसा न मान बैठ, जैसा कि टार्कमादा (Tarquemada)[1] ने समझ लिया था, कि तू भी उनमेंसे एक है।

*

प्राचीन युगोंमें एकदम शक्ति और कर्मसे परिपूर्ण आत्माओंकी एक श्रेष्ठतम दृढ़ोक्ति थी, "उतने ही निश्चित रूपमें जितने निश्चित

---

[1]यह स्पेनकी 'धार्मिक कचहरी' (धर्मविरोधी लोगोंकी खोज करने और दंड देनेवाली संस्था) का एक प्रधान अफसर था।

रूपमें भगवान् विद्यमान हैं।" परंतु हमारी आधुनिक आवश्यकताके लिये दूसरी दृढ़ोक्ति अधिक उपयुक्त होगी, "उतने ही निश्चित रूपमें जितने निश्चित रूपमें भगवान् प्यार करते हैं।"

*

सेवा करना मुख्यत: भगवत्प्रेमी और भगवद्-ज्ञानीके लिये इस कारण उपयोगी होता है कि वह उसे भगवान्‌की स्थूल कलाकारीके विलक्षण आश्चर्योंको पूर्ण ब्योरेके साथ समझने तथा उनका मूल्यांकन करनेकी योग्यता प्रदान करता है। एक तो सीखता और चिल्लाकर कहता है, "देख, किस तरह आत्मा जड़तत्त्वमें अभिव्यक्त हुआ है"; दूसरा कहता है, "देख, मेरे परमप्रेमी और प्रभुका, पूर्ण कलाकार और सर्वशक्तिमान् हाथका स्पर्श।"

*

ऐ विश्वका हास्यरसिक कवि! तू अपने जगत्‌को देखता है और मन-ही-मन मीठी हंसी हंसता है। पर क्या तू मुझे भी दिव्य नेत्रोंसे नहीं देखने देगा और अपने विश्वव्यापी हास्यमें भाग नहीं लेने देगा?

*

कालिदास एक निर्भीक रूपक देते हुए कहते हैं कि कैलासके हिम-खंड क्या हैं, मानों शिवके जगत्-हास्यके निनाद परम शुभ्रता और शुद्धताके रूपमें पर्वत-शिखरोंपर जम गये हैं। यह सच है; और जब उनकी छाया हृदयपर पड़ती है तब सांसारिक चिंताएं नीचेके बादलोंकी तरह विगलित होकर अपनी वास्तविक अस्तित्व-हीनताको प्राप्त हो जाती हैं।

*

जीवका सबसे अधिक विलक्षण अनुभव यह है कि जब वह दु:ख-क्लेशके आकार और उससे होनेवाली आशंकाकी परवा करना छोड़ देता है तो वह देखता है कि उसके इर्दगिर्द कहीं दु:ख-क्लेशका कोई नाम-निशान भी नहीं है। फिर उसके बाद ही हम उन झूठे बादलोंके पीछे भगवान्‌को अपने ऊपर हंसते हुए सुनते हैं।

*

ओ तू दानव! क्या तेरा प्रयास सफल हो गया है? क्या तू रावण और हिरण्यकशिपुकी तरह बैठा देवताओं और जगत्पतिकी सेवा पा रहा है? परंतु तेरा अंतरात्मा जिस चीजकी वास्तवमें खोज कर रहा था वह तेरी पकड़से बाहर चली गयी है।

*

रावणके मनने सोचा कि वह विश्वके एकाधिपत्य और रामके ऊपर विजय-प्राप्तिके लिये लालायित था; परंतु जिस उद्देश्यपर उसके अंतरात्माने अपनी दृष्टि चिरदिन जमाये रखी थी वह था यथासंभव शीघ्रसे शीघ्र अपने स्वर्गको वापस लौट जाना और फिरसे भगवान्का चाकर बन जाना। अतएव, सबसे सहज पथके रूपमें, वह घोर शत्रुताके आलिंगनके साथ भगवान्के ऊपर टूट पड़ा।

*

सबसे महान् आनंद है नारदकी तरह भगवान्का दास बन जाना; सबसे जघन्य नरक है भगवान्से परित्यक्त होकर संसारका मालिक बन जाना। जो चीज भगवान्-विषयक अज्ञानपूर्ण परिकल्पनाके लिये सबसे अधिक समीप प्रतीत होती है वह उनसे सबसे अधिक दूर होती है।

*

भगवान्का सेवक होना कुछ चीज है; भगवान्का दास होना उससे भी बड़ी चीज है।

*

संसारका अधिपति बन जानेमें निश्चय ही चरम आनंद है यदि किसीको सारे संसारका प्रेम प्राप्त हो; परंतु उसके लिये तो उसके साथ-ही-साथ उसे सारी मनुष्यजातिका गुलाम भी बनना पड़ेगा।

*

आखिरकार, जब तू यह हिसाब लगायेगा कि तूने भगवान्की कितनी दीर्घ सेवा की तो तू देखेगा कि तूने मनुष्यजातिके प्रेमके वश जो अधूरा और तुच्छ सत्कार्य किया बस वही तेरा सबसे बड़ा कार्य था।

*

दो कार्य हैं जिनसे भगवान् अपने सेवकपर पूर्ण संतुष्ट होते हैं: एक तो मौन पूजाभावके साथ उनके मंदिरमें झाड़ू लगाना और दूसरा, मानवताके अंदर उनकी दिव्य संसिद्धिके लिये संसारके युद्धक्षेत्रमें संग्राम करना।

*

जिस मनुष्यने मानव-प्राणियोंकी थोड़ी-सी भी भलाई की है वह, चाहे सबसे निकृष्ट पापी ही क्यों न हो, भगवान्द्वारा उनके प्रेमियों और सेवकोंकी श्रेणीमें स्वीकृत होता है। वह शाश्वत प्रभुके मुख-मंडलके अवश्य दर्शन पाता है।

*

ऐ अपनी दुर्बलताके हाथोंमें नाचनेवाला मूर्ख! भयके पदके द्वारा भगवान्का मुंह अपने-आपसे मत छिपा, अनुनयशील दुर्बलताके साथ उनके समीप मत जा। देख! तू उनके चेहरेपर शासक और विचारककी गंभीरता नहीं देखेगा, बल्कि प्रेमीकी मुस्कान देखेगा।

*

जैसे एक पहलवान अपने साथीके साथ कुश्ती करता है वैसे ही तू जबतक भगवान्के साथ कुश्ती करना नहीं सीख लेता तबतक तेरे अंतरात्माकी शक्ति सर्वदा ही तुझसे छिपी रहेगी।

*

शुंभने सबसे पहले अपने हृदय और शरीरसे कालीको प्यार किया, फिर वह उनपर क्रोधित हो गया और उसने उनके साथ युद्ध किया, अंतमें उसने उन्हें पराजित किया, उनके केश पकड़कर उन्हें अपने चारों ओर आकाशमें तीन बार घुमाया; फिर दूसरे ही क्षण वह कालीद्वारा निहत हुआ। ये ही अमरत्वकी ओर ले जानेवाले दैत्यके चार पग हैं और उनमेंसे अंतिम पग सबसे अधिक लंबा और सबसे अधिक शक्तिशाली होता है।

*

काली भयावनी शक्ति और क्रुद्ध प्रेमके रूपमें अभिव्यक्त श्रीकृष्ण

ही हैं। वह अपने प्रचंड प्रहारोंके द्वारा शरीर, प्राण और मनमें स्थित आत्माकी हत्या करती हैं जिसमें कि वह शाश्वत चिदात्माके रूपमें मुक्त हो जाय।

*

गभीर यहूदी कथानकके अनुसार हमारे माता-पिताका पतन हुआ, क्योंकि उन्होंने पाप और पुण्यके वृक्षका फल चखा। यदि उन्होंने तुरत शाश्वत जीवनके वृक्षका रसास्वादन कर लिया होता तो वे तात्कालिक परिणामसे वच गये होते; परंतु मानवताके अंदर जो भगवान्‌की अभिसंधि है वह विफल हो गयी होती। भगवान्‌का आक्रोश हमारे लिये शाश्वत सुयोग ही सिद्ध होता है।

*　　　*　　　*

यदि नरकका होना संभव हो तो वह उच्चतम स्वर्गमें जानेका सवसे छोटा रास्ता होगा। कारण, सचमुच भगवान् प्यार ही करते हैं।

*

भगवान् हमें प्रत्येक 'इडेन' (स्वर्गीय वगीचे) मेंसे वाहर खदेड़ देते हैं जिसमें कि हम रेगिस्तानमेंसे गुजरते हुए किसी अधिक दिव्य स्वर्गतक जानेके लिये वाध्य हों। यदि तुझे आश्चर्य होता हो कि उस रूखे-सूखे और भयंकर पथकी आवश्यकता ही क्यों होनी चाहिये तो इसका अर्थ है कि तेरे मनने तुझे मूर्ख वना दिया है और तूने पीछे विद्यमान अपने अंतरात्मा तथा उसकी अस्पप्ट इच्छाओं एवं गुप्त आनंदोंका अनुशीलन नहीं किया है।

*

स्वस्थ मन दुःख-दर्दसे घृणा करता है; क्योंकि मनुष्य कभी-कभी जो अपने मनमें दुःख-दर्दकी कामना वढ़ाता है वह दूषित और प्रकृतिके विपरीत होती है। परंतु अंतरात्मा मन तथा उसके दुःख-कष्टोंकी परवा उससे जरा भी अधिक नहीं करता जितनी परवा कि लोहा वनानेवाला मनुष्य चूल्हेमें जलते हुए कच्चे लोहेके दुःख-

दर्दके लिये करता है; अंतरात्मा तो महज अपनी निजी आवश्यकताओं तथा अपनी निजी भूखका ही अनुसरण करता है।

*

बिना विचारे दया करना स्वभावका एक सबसे उदार गुण है; एक भी जीवित वस्तुको कम-से-कम आघात भी न पहुंचाना सभी मानवीय गुणोंमें उच्चतम गुण है; परंतु भगवान् इन दोनोंमेंसे कोई कार्य नहीं करते। तो क्या इसी कारण मनुष्य उन सर्व-प्रेममयसे अधिक महान् और अधिक अच्छा है?

*

यह पता चलना कि किसी मनुष्यके शरीर या मनको दु:ख-कष्टसे बचा देना सर्वदा उसके अंतरात्मा, मन या शरीरके लिये हितकारी नहीं होता, मानवीय ढंगसे करुणा करनेवालेके लिये अत्यंत कडुआ अनुभव होता है।

*

मानवीय दया अज्ञान और दुर्बलतासे पैदा होती है; वह भावोच्छ्वासका दास होती है। भागवत करुणा समझती, विवेक करती और रक्षा करती है।

*

कभी-कभी दया प्रेमका एक अच्छा प्रतिरूप होती है; पर वह सदा ही प्रतिरूपसे अधिक और कुछ नहीं होती।

*

आत्म-दया सर्वदा ही आत्मप्रेमसे उत्पन्न होती है; परंतु दूसरोंके प्रति दया सर्वदा अपने पात्रके प्रति प्रेम होनेके कारण नहीं उत्पन्न होती। यह कभी-कभी तो दु:ख-कष्टके दृश्यसे आत्मनिष्ठ हिचक होती है; कभी-कभी दरिद्रके लिये धनी व्यक्तिका घृणापूर्ण दान होती है। तू बल्कि मानवीय दयाके बदले भगवान्‌की दिव्य करुणाको विकसित कर।

*

दया नहीं जो कि हृदयको काटती और भीतरी अंगोंको दुर्बल बनाती है, बल्कि एक दिव्य प्रभुत्वशाली और अक्षुब्ध करुणा एवं उपकारिता वह गुण है जिसे हमें प्रोत्साहित करना चाहिये।

*

मनुष्योंको प्यार कर और उनकी सेवा कर, पर इस बातकी सावधानी रख कि कहीं तू प्रशंसाकी कामना न कर बैठे। बल्कि, अपने अंदर विराजमान भगवान्‌की आज्ञाका पालन कर।

*

भगवान् तथा उनके दूतोंकी वाणीको न सुनना ही संसारकी भावनाके अनुसार मानसिक स्वस्थता है।

*

भगवान्‌को सर्वत्र देख और उनके छद्मवेशोंको देखकर भयभीत हो। विश्वास कर कि समस्त मिथ्यापन या तो अभी तैयार होता हुआ एक सत्य है अथवा भंग होता हुआ सत्य, समस्त असफलता प्रच्छन्न चरितार्थता, समस्त दुर्बलता अपनी दृष्टिसे ही अपनेको छिपानेवाली एक शक्तिमत्ता, समस्त पीड़ा एक गुप्त और प्रचंड आनंदोल्लास है। यदि तू इस बातमें दृढ़तापूर्वक और सतत भावसे विश्वास बनाये रख तो अंतमें तू सर्वसत्यमय, सर्वशक्तिमय और सर्वानंदमयके दर्शन और उनकी प्राप्ति कर लेगा।

*

मानव-प्रेम अपने निजी हर्षोल्लासके कारण ही असफल हो जाता है,, मानव-पराक्रम अपने निजी प्रयासके कारण ही निःशेष हो जाता है; मानव-ज्ञान एक ऐसी परछाईं फेंकता है जो सत्यरूपी गोलकके आधे भागको उसके अपने ही सूर्यालोकसे छिपा देती है; परंतु भागवत ज्ञान विरोधी सत्योंका आलिंगन करता और उनमें सामंजस्य स्थापित करता है, भागवत सामर्थ्य अकुंठ आत्मव्ययके कारण वर्द्धित होता है, भागवत प्रेम अपने-आपको संपूर्ण रूपसे लुटा सकता है पर

फिर भी कभी व्यर्थ नष्ट नहीं हो सकता अथवा घट नहीं सकता।

*

विशुद्ध सत्यकी खोज करते हुए मन जो मिथ्यापनका त्याग करता है वही एक प्रधान कारण है जिससे वह सुनिश्चित, अखंड और पूर्ण सत्यको नहीं प्राप्त कर पाता; दिव्य मन मिथ्यापनसे बच निकलनेका प्रयास नहीं करता, बल्कि उस सत्यको पकड़नेका प्रयास करता है जो अत्यंत भद्दी या भ्रष्ट भूल-भ्रांतिके पीछे छिपा रहता है।

*

किसी भी वस्तुके विषयमें सारा सत्य यह है कि वह एक पूर्ण तथा सर्वालिंगी गोलक होता है जो निरंतर ज्ञानके एकमात्र विषय और वस्तु, श्रीभगवान्‌के चारों ओर चक्कर काटता रहता है पर कभी उन्हें स्पर्श नहीं करता।

*

ऐसे बहुतसे गंभीर सत्य हैं जो उन अस्त्रोंके समान होते हैं जो अनभ्यस्त अस्त्रचालकके लिये खतरनाक होते हैं। समुचित रूपमें व्यवहार करनेपर वे भगवान्‌के अस्त्रागारके अत्यंत मूल्यवान् और शक्तिशाली अस्त्र होते हैं।

*

जिस दुर्दमनीय आग्रहके साथ हम अपनी तुच्छ, खंड-विखंड, निशाक्रांत तथा क्लेशग्रस्त व्यक्तिगत सत्ताके साथ उस समय भी चिपके रहते हैं जब कि हमारे विश्वगत जीवनका आनंद हमें पुकारता है, वह भगवान्‌के रहस्योंमेंसे एक अत्यंत आश्चर्यजनक रहस्य है। इसकी तुलना केवल उस अनंत अंधताके साथ की जा सकती है जिसकी सहायतासे हम अपने अहंकारकी एक छाया संपूर्ण जगत्‌के ऊपर फेंक देते हैं और उसे ही विश्वपुरुषकी आख्या दे देते हैं। ये दोनों प्रकारके अंधकार ही, सच पूछा जाय तो, मायाके एकदम सारतत्त्व तथा अंतर्निहित शक्ति हैं।

*

अनीश्वरवाद भगवान्‌संबंधी उच्चतम ज्ञानकी ही परछाईं अथवा अंधकारपूर्ण पक्ष है। भगवान्‌के विषयमें बनाया हुआ हमारा प्रत्येक सिद्धांत, यद्यपि एक रूपकके रूपमें वह सर्वदा ही सत्य होता है, उस समय मिथ्या बन जाता है जब हम उसे एक पूर्ण सिद्धांतके रूपम स्वीकार करते हैं। अनीश्वरवादी और अज्ञेयवादी हमारी भूल-भ्रांतिको ही हमें स्मरण करानेके लिये आते हैं।

*

भगवान्-संबंधी अस्वीकृतियां भी हमारे लिये उतनी ही उपयोगी हैं जितनी कि उनके विषयकी स्वीकृतियां। सच पूछा जाय तो मानवीय ज्ञानको और भी अच्छे रूपमें पूर्णता प्रदान करनेके लिये स्वयं भगवान् ही अनीश्वरवादी बनकर अपने निजी अस्तित्वको अस्वीकार करते हैं। ईसा और रामकृष्णके अंदर ही भगवान्‌को देखना और उनकी वाणी सुनना यथेष्ट नहीं है, हमें हक्सले (Huxley)[१] और हेकेल (Haeckel)[२] के अंदर भी उन्हें देखना होगा और उनकी वाणी सुननी होगी।

*

क्या तू अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले और अपनी हत्या करनेवालेके भीतर मृत्युके क्षण या अत्याचारके समय भी भगवान्‌को देख सकता है? क्या तू उसके अंदर भी उनको देख सकता है जिसकी तू हत्या कर रहा है, उसकी हत्या करते समय भी उन्हें देख और प्यार कर सकता है? तब निश्चय ही परम ज्ञान तेरे हाथमें आ गया है। भला वह मनुष्य कृष्णको कैसे पा सकता है जिसने कभी कालीकी उपासना नहीं की है?

---

[१]हक्सले १९ वीं शताब्दीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक और लेखक थे। इन्होंने पार्थिव क्रमविकासके सिद्धांतका प्रतिपादन किया है।

[२]हेकेल जर्मनीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक और दार्शनिक थे। इन्होंने भी पार्थिव क्रमविकासके सिद्धांतको पुष्ट किया है।

## हमारे अन्यान्य प्रकाशन

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | सफेद गुलाब (भाग १) | (श्रीमांके पत्र) | २.५० |
| २. | मृत्यु और उसपर विजय | (श्रीमां-श्रीअरविंद) | ३.०० |
| ३. | मानव एकताका स्वरूप | (श्रीअरविंद) | २.५० |
| ४. | अवतार | (श्रीअरविंद) | २.०० |
| ५. | श्रीमाताजीकी बातचीत (भाग १) | | ३.०० |
| ६. | जीवन-विज्ञान | (श्रीमां) | २.५० |
| ७. | ध्यान और एकाग्रता | (श्रीमां-श्रीअरविंद) | ३.०० |
| ८. | प्राण और उसका रूपांतर (भाग १) | (श्रीअरविंद) | २.५० |
| ९. | प्राण और उसका रूपांतर (भाग २) | (श्रीअरविंद) | ३.०० |
| १०. | श्रीमाताजीकी बातचीत (भाग २) | | ३.०० |
| ११. | आंतरिक परिपूर्णता | (श्रीमां) | २.५० |
| १२. | योगसाधनाके कुछ प्रमुख तत्त्व | (श्रीअरविंद) | ३.०० |
| १३. | भागवत मुहूर्त्त | (श्रीअरविंद) | ३.५० |
| १४. | सफेद गुलाब (भाग २) | (श्रीमांके पत्र) | २.५० |
| १५. | श्रीमाताजीकी बातचीत (भाग ३) | | ३.५० |
| १६. | चिंतनधारा और सूत्रावली | (श्रीअरविंद) | ३.५० |
| १७. | चैत्य पुरुष | (श्रीअरविंद) | प्रेसमें |
| १८. | दिव्य जीवन (भाग २, खंड १) सजिल्द | | १६.०० |

**पत्रिकाओंकी पुरानी फाईलें :**

| | | |
|---|---|---|
| १. | 'अदिति' की सजिल्द फाइलें | १०.०० प्रति वर्ष |
| २. | 'अर्चना' के सात अंकोंका सेट | २७.०० प्रति सेट |

मिलनेका पता :

**अदिति कार्यालय**
**पांडिचेरी-२**

जब तुम अपने प्रत्येक विचार और कार्यमें, कला, साहित्य और जीवनमें, अपने परिवार, राजतंत्र और समाजमें, धनोपार्जन, धनसंग्रह या धनव्यय करनेमें एकमेव अमर सत्ताका, उसके निम्नतर मर-स्वरूपके अंदर, प्रतिरूप बन जाने और उसे अभिव्यक्त करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेते हो तब तुम्हारे लिये जीवन और कर्म संसिद्ध हो जाते हैं, सदाके लिये पूर्णत्वका मुकुट धारण कर लेते हैं।

*

दो कार्य हैं जिनसे भगवान् अपने सेवकपर पूर्ण संतुष्ट होते हैं—एक तो मौन पूजाभावके साथ उनके मंदिरमें झाडू लगाना और दूसरा, मानवताके अंदर उनकी दिव्य संसिद्धिके लिये संसारके युद्धक्षेत्रमें संग्राम करना।

—श्रीअरविन्द

अदिति पुस्तक-माला—पुष्प १५

मूल्य रु. ३-५०